सुबोध-संग्रह.

संग्रहकर्ता

बालब्रह्मचारी शास्त्रोद्धारक

श्रीअमोलक ऋषिजी महाराज.



प्रसिद्धकर्ता

श्रीमति महासतीजी

श्रीमेहताब कुंवरजी महाराज का

तपोत्सव फण्ड की सहायता से

जैन साधुमार्गी संघ धुलिया, (पश्चिम खानदेश).

प्रथमावृत्ति प्रत १००० } मूल्य--सद्वर्तन. { श्रीवीराब्द २४५३ विक्रमसम्वत् १९८३

प्रस्तावना.



इसवक्त में ज्ञान प्रसार के लिये यंत्रिक साधन की सहायता होनेसे ज्ञान वृद्धी के इच्छु को ज्ञान के फेलाव का खूबही प्रयास कर रहे हैं. जिधर देखो उधर पुराना या नवीन साहित्य उसही स्वरूपमें या रूपान्तर में लक्खों पुस्तको द्वार प्रसिद्धी में आया है आरहा है और भी खूबही आने की आशा है. जिस हेतु और जिस उत्सहा से रचयिता संग्रहिता लेखनी चलाते और प्रकाशक द्रव्यव्यय कर प्रसिद्धी में रखते हैं उसही उत्सहा से ग्राहक पाठकों ग्रहण करते देखे जाते है अर्थात् पुस्तक प्रसिद्ध होने की जाहीरात होतेही वे हजारों पुस्तको स्वल्पही कालमें बीतीर्ण होजाती है. क्याही अच्छा हो यदि उसका वैसाही उपयोग हो तो आज यह भारत वर्ष उसही पोषक को उसे पुनः पोषक बन जावे कि जैसे पुर्व कालमें अंकिना का तोपनाना.जिससे यह आर्यावर्त्त सर्वी देशोंमे 'आदर्श' बन रहाथा. वैसाही बन जावे इसलिये विज्ञप्ति है कि यह अहो पाठक गणों! यो 'सुबोध संग्रह' नाम स्थापन कर जो पुस्तक आपके कर कमल में उपस्थित हुआ है. इसमें संग्रहित ग्रन्थों कोइ 'नवीन नहीं है किन्तु पराचीन और अनेक वक्त प्रसिद्धी आये हुए है.

१ प्रथम जो छंद दिये गये है वे मंगल रूप 'सवैया

पठन के योग्य हैं. २ जो **शांती प्रकाश** है सो उसके अर्थ धरमार्थ का निदिध्यासनपूर्वक पठकर उपदेश वर्तन में लानेसे आत्मा में अवश्यही शांति का प्रकाश होना है. ३ **समाधि मरण** है सो आयुष्य के अन्त के निकट वर्नों को श्रवण करा उस. प्रमाणे वर्तन. करने सूचित करने से वह समाधी से आयुष्य पूर्ण. कर भविष्य में सुखी हो सकता है. ४ **दूसरा समाधी मरण** का भी यह मतलब है. किन्तु यह आतुरता के समय सुनाने का है. ५ इस के नीचे **सागारि संथारा** का पाठ रखा है यह भी भव भीरू ओं के लिये सदैव उपयोग में लेने जैसा है. ६ **रत्नाकर पचीसी** आत्मा को सम मार्ग में प्रवर्ती कराने-एक सद्उपदेसक.का जैसा सद्बोध करता है ७ **मेरी भावना** भी सन्मार्ग में प्रवर्तक को सूचित करने मार्ग दर्शक के समान है.८ **उपदेश शतक** का प्रथम श्लोक तो मंगला चरणार्थ अन्य ग्रन्थ का मैंने रखा है. बाकी के श्लोक अन्य पुस्तक में गुर्जर भाषा में छपे हुए हैं. जिसका मैरे -हाथ से उतारा कर अर्थ का शुद्धी वृद्धी के साथ अनुवाद किया है. श्लोक अशुद्ध दृष्टी पड़ने से कच्छ देश पावन कर्ता आठ कोटी मोटी पक्ष के परोपकार परायण कवीश्वर प्रवर पंडित युवाचार्यजी श्री नागचंन्द्रजी. महाराज पास भेजे थे. उन महा पुरुषोंने कृपा कर शुद्धी वृद्धी कर अन्तिम के दो नवीन श्लोक बना कर पीछे भेजे. यह ग्रन्थ जैन

कृत नहीं हैं, किन्तु उपदेशक व्याख्यान दाता ओं के वाक्यलंकार के लिये बडा उपयोगी है. ९ पूच्छीस णं सुयगडाङ्ग सूत्र का छट्ठा अध्याय वर्तमान शासनाधीश श्री महावीर स्वामिजी महाराज के गुणों का संक्षिप्त में वर्णन है, यह प्रत्येक जैनों को निपठन मनन करने योग्य है. और १० **नमिप्रवर्ज्या** [उत्तराध्ययन सूत्र का ९ वा अध्याय] इसका भी पाठ करनेका इसवक्त जैन साधुमार्गी यों में बहुत रिवाज है. इसलिए यह भी रखदिया है. इस में कथित इन्द्रकृत प्रश्नों का उत्तर जो नमिराय ऋषि ने दिया है, वह प्रत्येक मुमुक्षु ओं को मनन करने योग्य है. यह दोनों अध्याय अर्धमागधी(सपराचीन आयो को परम माननिय) भाषा में है इसका अर्थ अर्वाचीन वर्तमान के बहुत से पाठकों के समक्ष में आना मुशकिल जान. सहज समझ आवे ऐसा प्रत्येक गाथापर छन्द बन्ध भाषानुवाद भी मैंने यथा मति रचकर रखा है. इत्यादि महा सतीजी की सूचनानुसार बोध मय ग्रन्थों कर यह ग्रन्थित होने के कारण इसका नाम " सुबोध संग्रह " रखा है. आशा करता हूं कि पाठकगण इसमें संग्रहित ग्रन्थों का वक्तोवक्त यथोचित उपयोग कर सुखी बनेंगे.

हितेच्छु:-अमोलक ऋषि.



॥तपस्विनी जी श्री मेहताब कुंवरजी का परिचय॥

मालव देशके धारस्टेट में रहा नागदा ग्राम के निवासी ओसवाल वंशज पुण्यात्म अनेक व्रतों के पालक निरंत्र सदैव सामायिक व्रतके समाचरक श्रमणोपाक **शेठ मोतीलालजी चोरडिया** की धर्मात्मा शीलवंती सती धर्म पत्नी **दोलीबाइ** से सम्वत् १९५३ चेत शुक्ला चतुर्थी बुद्धवार को जो कन्या रत्न उत्पन्न हुआ जिसका नाम **सुन्दर बाई** रखा. और सम्वत १९५९ के अषाढ शुक्ला सप्तमी को शेठजी का स्वर्ग वास हुआ तब दोलीबाई आशासे थी. जिससे स० १९५९ कार्तिक के शुक्ला ६ को जो कन्यारत्न उत्पन्न हुआ जिसका नाम **सुरजबाइ** रखा. पती वियोगसे उद्विग्न चित्त की शांति के लिये अपनी पुत्री दोलीबाई को बदनावर निवासी शेठ **हिराचंदजी कोठेड** झालरवाले के सुपुत्र "ऊंकारलालजी और **गेंदीबाई** आदि सब कुटुम्ब मिल अपने घर को लेगये और धर्म निष्ठा सुश्राविका गेंदीबाई ने अपनी पुत्री को दोनों पौत्री सहित बडे प्रेम से सुख सामग्री और धर्मोपदेश से पोष तोष संतुष्ट की, धर्म में आत्म रमण होनेसे दुःख मंद हुआ उक्त महातपस्विनी महासती श्री **उमाजी** महा प्रभाविक व्याख्यानी महासती **केशरीजी** ठाणा से वहां पधारे और कहा कि बाई तुमारे मामाजी घोर तपस्वी पंचद्रव्योपरी सर्व आहार के परित्यागी निरंत्र बेले २ पारणा के कर्ता **श्री स्वरूप चंदजी**

महाराज जिस प्रकार आत्म कल्याण कर रहे हैं वैसेही तुमें भी करना चाहिये. कालान्तर में दोलीबाइ को स्वप्न में स्वरूपचंदजी महाराजाने सूचित किया कि जो आत्म कल्याण करना हो तो १२ महिने के अन्दर करलो. इत्यादि सम्बन्ध से दोलीबाई को वैराग्य जाग्रत हुआ और दीक्षा की बात करी. यह समाचार बाईके मामी सुसरा **धुलीचंदजी** को मालम होनेसे वे बाइको आपने घर ले गये और बाइका दिल किसी प्रकार से दुःख नहीं पावे ऐसी तरह रखने लगे. तैसेही बाइके काकी सुसरा **उँकारलालजी**भी सार-संभार अच्छी करने लगे किन्तु बाइका वैराग्य कम हुआ नहीं. और अपना इष्टितार्थ साधने जिनके घर अंदाज ४०–५० दीक्षा हुइ होगी ऐसे धर्म दीपक राजमान **श्रीमान शेठजी गोपालजी पन्नालालजी** की दुकानके मालक धर्म धुरंधर पुण्यप्रभावक सुश्रावक **भाइजी मोतीलालजी** किल्ले **धारवाले**को बाइने अपना हेतू दर्शाया. शेठजी ने कहा कि दोनों बच्ची नादान है. इनके होंशार होनेबाद दीक्षा लेलेना. किन्तु बाईने कबूल नही किया. तब शेठजीने बडी पुत्री सुंदरबाइसे पूछे उसनेभी कहा कि मैभी दीक्षा लेवूंगी. दोनोंको बहुत परचाइ किन्तु किंचितमी चली नहीं, तब शेठजीने कहाकि तुम दृढ रहो तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो जायगी.

दोलीबाइके दोनों पक्षवालों को यह समाचार मालुम पड़ने से वे धार आये और दोनोंको बहुत समझाइ, किन्तु किंचितही माना नहीं. तब राजमें फिरयादकी; राजा साहेबने दोनों को बोलाइ तब शेठजी ने कहा हमारे घराने की स्त्रीयों दरबार में आ नहीं सकती है. तब सरकारने अहलकारोंको शेठजी के घर भेजकर बाइकी जबानी ली; बहुत समझाइ. किन्तु निश्चय नहीं पलटा, तब सुन्दर बाइसे कहा तुमारी शादी की जायगी, सब प्रकार सुख पावोगी दीक्षा मत लो इत्यादि, सुनकर सुन्दर बाइने कहा यदि तीन बातका बन्दोबस्त हो तो मै दीक्षा नहीं लेवूं. न्यायाधिशने पूछा क्या ? बाइने कहा " १ मै रांड [विधवा] नहीं होवूं. २ मेरी मां नहीं मेरे और ३ मै नहीं मरूं " दशवर्षकी नन्हीं बच्ची के मुहसे यह सुन सबही आश्चर्यचकित बन गये. लोगों के आँखों से आंशू छूट पडे और आखीर मे नाइलाज सभी कुटुम्बियों ने रुदन करते आज्ञा प्रदानकी. परमपूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की संप्रदायके प्रभाविक पूज्य श्री नन्दलालजी महाराज तत्पाटविय मिथ्यातिमिरमार्तंड पूज्य श्री माधवमुनिजी महाराज, तत पाटविय व्याख्यान वाचस्पति पूज्य श्री चम्पालालजी महाजके अनुयायी स्थविर मुनि श्री ताराचंदजी महाराज आदि मुनिवरों और सतिशिरोमणि महासतीजी श्री वालीजी महाराज. विदुषि महासती श्री वर्द्धमन कुवरजी महाराज आदि सतियों उसवक्त धारा नगरी में उपस्थित

थे; वे सबभी बगीचेमें पधारे और हाथी घोडे सेंकडों स्त्री पुरुषों के परिवारसे वादित्रेम बजार गजाते दोनों वैरागण बाइ को उत्तम वस्त्र-भूषण से शज्ज कर जयइवनीसे बधाते बगिचेमें लेगयेऔर संवत १९६३ चेत शुक्ला १३ को सविधी दीक्षा दिलाकर दोनों बाइका मेहताब कुंवरजी नाम स्थपन कर महासती बडे मेन कुंवरजीकी चेली दोनों को बनाइ गइ. छोटी पुत्रि सुरजबाइ को गेंदाबाइ अपने साथ सब परिवार के साथ लेकर स्वस्थान गइ. दोनों सतियों ज्ञानाभ्यास तप संयम में आत्म रमण करने लगी.

कितनेक वर्ष बाद महासती यों का बहुतावर पधारना हुआ बहां सूर्यबाइ दर्शनार्थ आइ, माता भग्नी का साध्वी के दर्शन से और वारतालाप से सुरजबाइ को भी वैराग्य जाग्रत हुआ, माता के साथ जाने लगी किन्तु परिवार ने जाने नहीं दी. और जब महासतीयों का भार पधारना हुआ तब कारण वशात् सुरज-बाइ का भी बहां आना हो गया. महासतीयों के दर्शन कर दीक्षा की इच्छा प्रगट की सतीजी ने यह बात शेठजी मोतीलालजी को दर्शाइ. शेठजीने सुरजबाइसे पूछा परिणाम निश्चल देख, खुशी हुए. कुटुम्बियों को खबर होतेही सब जने आये. उक्त प्रकार बहुत पर्यत्न किया किन्तु डिगा सके नहीं. तब सं. १९७१ मृगश्र शुक्ला ३ को महोत्सव पूर्वक दीक्षा दिलाकर श्री सुंदर कवरजी की शिष्या बना दीगई. इन्हीके पास, सं: १९७८ मृगश्र शुक्ला ५ को

दीक्षा ली जिनका नाम तेजकवरजी रखा. यह चारोंही ठाणे ग्रामानुग्राम विहार करते खानदेश पधारे और सं. १९८५ का भुसावल में चौमास किया. यो चारों सतीयों धर्म दीपा रही है.

यह पुस्तक प्रसिद्ध कैसी हुइ ?

सं. १९८५ महासुद १३ गुरुवार को बालब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी महाराज. वृद्धि मुनि श्रीराज ऋषिजी महाराज. तपस्वी राजश्रीउदय ऋषिजी महाराज. विद्याविलासी श्रीकल्यान ऋषिजी महाराज. विनीत विचक्षण श्री मुलतान ऋषिजी महाराज ठाये ५ धुलिये शेहर पधारे. यहां कारण वशात् अधिक काल रहना हुआ. तब श्रीअमोलक ऋषिजी महाराज श्री से मिलने प्रसिद्ध वक्ता महाप्रभाविक व्याख्यानी श्री चौथमलजी महाराज ठाणे २ पधारे. एकही स्थानक में बडे प्रेम सेरहे. व्याख्याना दि द्वारा धर्म का खूब उद्योत हुआ. इनके विहारहुअे बाद बंबइ सेहर का चौमास दीपाकर स्थविर भगवंत महा भाग्यवान श्री ताराचंदजी महाराज. पंडित सुव्याख्यानी श्री किसन लालजी महाराज. प्रभाविक व्याख्यानी शांत दांत श्रीसौभाग्यमलजी महाराज. वृद्ध मुनिश्री वच्छराजजी महाराज, पंडित कविराज श्री सुरजमलजी महाराज. घोर तपस्वी और वैयावची श्री भगवानदासजी महाराज. तपस्वीजी श्रीकेशरीमलजी महाराज. ठाण. ७ धुलिये पधारे. एकही स्थानमें बडे प्रेम में रहे. विद्वान मुनि श्री केवलचंदजी ने २५ अवधान किये.

इस से भी धर्म खूब दीपा. इन महाराज के दर्शनार्थ तपस्वीजी महासती श्री मेहताब कंवरजी महाराज. मुख्यास्थानी श्री सुंदरकंवरजी महाराज. बाल्यब्रह्मचारीणी कवीयत्री श्री सुरजकंवरजी महाराज. विनीत वैयावचा श्री नेनकंवरजी महाराज ठाणा ४ पधारे श्री ताराचंदजी महाराज तो म्लाव की तर्फ विहार करगये और महासतीजी का इरादा श्री अमोल ऋषिजी महाराज के मेले चौमासा करनेका होनेसे विनंती पूर्वक चौमासा कराया. चौमासे में १२५ के अंदाज अठाइ आदि बड़ा तप ३५ स्कन्ध तथा ३-४ हजार मनुष्यका दर्शनार्थ आगम हुवा इत्यादि खूब धर्म तप हुआ. जैन जैनेतर सबही कहते हैं कि ऐसा चौमासे का आनन्द आजतक कभीभी यहां नहीं आया.

महासती श्री मेहताब कंवरजी ने ३२ उपवासका तप किया था उसवक्त ४००-५०० मनुष्य बाहिर ग्राम के दर्शनार्थ आये थे उस वक्त ज्ञान वृद्धी के वास्ते कुछ चन्दा हुआथा. उसके खरच से यह पुस्तक प्रसिद्धी में रखी गइ है जी.

गुणानुरागी—मोतीलाल.

प्रकाशक:—श्रीमती मताप्सतीजी
श्रीमेहताब कुंवरजी महाराज का तपोत्सव फण्डकी सहायतासे
धुलिया (प. खानदेश) का जैन श्री संघ तरफसे
सेठजी पृथ्वीराज हेमराज दुघेडिया.



मुद्रक:—कालिदास सिताराम पंडित
समर्थ छापखाना,
आग्रारोड धुलिया. पश्चिम खानदेश.

ॐनमःसिद्धं

सुबोध-संग्रह



मङ्गलाचरण

॥ श्री प्रमेष्टी परमानन्द छन्द ॥

॥ दोहा ॥

ॐ नमो अरिहंताणं । इम पांचुं पदमाय ॥
ॐ ह्राँ ह्रीँ श्री ह्रौँ स्वाहा ।जपना ह्री श्री थाय॥१॥
१०८ अ. सि. आ. उ. सा. ।

॥ त्रिभंगी छन्द ॥

प्रणमुं सरस्वती । होयवर मती । चित्त हुलसे अति । गुण थुणवा ॥
शुद्ध भवि ध्यावे । सो सुख पावे । एक चित्त चढावे ।यशः सुणवा॥
जय जय परमेष्टी । जगमें श्रेष्टी । दे पद जेष्टी । जगधारं ॥
त्रीजग मझारं । नाम उदारं । जय सुखकारं । नवकारं ॥ १ ॥
बारे गुणवंता । श्री अरिहंता लोक महंता । गुण गेहरा ॥
घन घातिक कर्म । मिथ्या भर्म । त्याग अधर्म । विष लेहरा ॥

शुक्ल मनध्याया । केवल पाया । इन्द्र आया । तिण वारं ॥ त्रि॥२॥
वर परिषद् बारे । हर्ष अपारे । मुणि अवधारे । जिनवाणी ॥
अमृत से प्यारी । जग हितकारी ॥ सुर नर नारी । पहचाणी ॥
केइ संयम धारे । केइ व्रतधारे । कर्म विदारे । शिवत्यारं ॥ त्रि॥३॥
द्वितीय पद ध्यावो । सिद्ध गुणगावो । फिर नहीं आवो । तिहां आई ॥
जे अलख निरंजन । भवि मन रंजन । कर्म के भंजन । शिव सांई ॥
पुद्गलका फंदा । दूर निकंदा । परमानन्दा । अविकारं ॥ त्रि ॥ ४ ॥
अष्ट गुण को धारे । जगत् निवारे । काल नमारे । उनतांई ॥
जिहां सुख अनंता । केवलवंता । गुण उचरंता । छे नांई ॥
निज वास बताइ । यो मुझतांइ । तुमसा नाहीं । दातारं ॥ त्रि ॥५॥
गणिवर पद तीजे । नित्य नमीजे । सेवा कीजे । हर्ष धरी ॥
पंच महाव्रत पाले । दूषण टाले । गजजिम माले । शूर हरी ॥
पांचु वश करते । पंच उचरते । पांचूही हरते । दुःखकारं ॥
त्रि॥६॥शीतल जिमचंदा । अचल गिरंदा । गणपति इंदा । शिरदारं॥
सागर जिम गहेरा । ज्ञान लेहरा । मिथ्या अन्धेरा । परिहारं ॥
सम्पद् धर्म पावे । न्याय बढावे । पाले पलावे । आचारं॥ त्रि ॥७ ॥
गुरु सेवा साधी । विनय आराधी । चित्त समाधी । ज्ञान भणे ॥
चार अंग वाणी । पेटी समाणी । पूर्व जाणी । संशय हणे ॥
निर्वद्य सत्य भासे । शास्त्र भासे । गुण अभिलासे । निजसारं॥ त्रि॥८॥
उवज्झाया स्वामी । अन्तरयामी । शिव मन गामी । हितकारी ॥

शीलग ने आंग । योग शिखावे । न्याय बतावे । उपकारी ॥
दुर्गतिमां पडतो । कादव गडतो । चित्त करे चढतो । तिणवारं ॥ त्रि
॥ ९ ॥कञ्चुक अही त्यागे । दूरा भागे । तिम वैरागे । पाप हरे ॥
झुठा पर छन्दा । मोहनी फन्दा । प्रभु का बन्दा । योग धरे ॥
सब माल खजीना । त्याग न कीना । महाव्रत लीना । अणगारं ॥ त्रि
॥१०॥पाले शुद्ध करणी । भवजल तरणी । आपद हरणी । दृष्टी रखे॥
बोले सत्य बाणी । गुप्ति ठाणी । जगका प्राणी ।सम लखे ॥
शिव मार्ग ध्यावे । पाप हटावे । धर्म बढावे । सत्यसारं ॥त्रि॥११॥
ए प्रणमें भावे । विघन हटावे । अरी हरी आवे । दूर सही ॥
जे तप तेजारी । दुःख बिमारी । सोग सवारी । आत नहीं ॥
ग्रह पीडा भागे । दृष्टी न लागे । शत्रु न जागे । हीगार ॥त्रि ॥१२॥
ये मंत्र नीको । तारक जीको । त्रिजग टीको । सुखदाता ॥
ये मंत्र करारी । महिमा भारी । लहे नरनारी । सुखसाता ॥
सरजीवन वेली । दे धन ठेली । भव भव केली । यह सारं॥त्रि॥१३॥
पद्मासन वाली । रंग निहाली । आरत टाली । ध्यान धरे ॥
तिलोक पयंपे । भावसु जपे । ऋद्धि सिद्धि सम्पे । जेह घरे ॥
यह छंद त्रिभंगी । गावे उमंगी । भव भव संगी । जय कारं॥त्रि॥१४॥

॥ श्री पंच प्रमेष्ठी स्तुति ॥

॥ नारच छद ॥

तिलोक संत श्रेष्ठिकं । नमामि परमेष्टिकं ॥ भजे भजे उदंगलं ।

भयामि सदा मंगलं॥ १ ॥ सर्वांग अंग सुन्दरं । मारंत मार दुर्धरं ॥
सहश्र अष्ट लंछनं । समस्त शुद्ध स्वच्छनं ॥ २॥ तितिक्ष जे चतुष्कं ।
हृणंत कर्म दुष्कं ॥ तपश्चर्या से पुष्कं । धरंत ध्यान सुप्टुकं ॥ ३ ॥
सुज्ञान पूर्ण धारकं । अज्ञान भर्म वारकं ॥ सुअष्ट प्रतिहारकं ।
सुभव्य जीव तारकं ॥४॥प्रमाद वाद खण्डितं । अनन्त गुण मण्डितं॥
अशुभ योग दण्डितं । नमामि परम पण्डितं॥५॥सुभानु कोटिभास्करं ।
भयाब्दी तारकं परं॥ विकार दृष्टि मोचनं । नमामि शांति लोचनं ॥६॥
सर्वश्र पाप खण्डनं । सुजैन धर्म मण्डनं ॥ अनन्तसुख दायकं ।
नमामि संघ नायकं ॥॥७॥ विशिष्ट गुण अष्टकं । समस्त शत्रु नष्टकं॥
अरूप रूप रासकं । सदैव स्थिर वासकं॥८॥ अनन्त सुख सुरेश्वरं ।
रहंत सदा निर्मितं ॥ भयोघ सर्व धारकं । नमामि निर्विकार कं॥९॥
छत्तीस गुण शोभितं । कषाय चउ क्षोभितं॥सु सम्यग्दृष्ट मानकं ।
नमामि नित्य वाचकं॥१०॥ प्रमाण नय संयुतं । पच्चीस गुण संयुतं॥
सुज्ञान अन्य दायणं । नमामि उपाध्यायणं॥११॥तजंत जगत् जालकं ।
पर प्राण रक्षपालकं ॥ वर्जंत पाप कारणं । गर्जंत धर्म धारणं ॥१२ ॥
तर्जंत काम क्रोधकं । लर्जंत सो विरोधकं ॥ वीतराग आण शोधकं ।
नमामि संत जोधकं॥१३ अज्ञानता प्रहारणं । अखील सुख कारणं॥
हृणंत मोह फेणतं । नमामि जिनवेणतं॥१४॥ मिथ्यान्धकार भंजनं ।
ददाति ज्ञान अंजनं ॥ प्रमाद दु:ख चूरणं । नमामि सत् गुरूणं ॥१५॥
तिलोकऋषि संस्तवे । शरणं सदा भवोभवे ॥ कृपार्णव मया करी

मंदव घो हिरी सिरी ॥ १६ ॥

दोहा:—जय जय श्री प्रमेष्टीको । जय जय श्री जिनवेण ॥ जय जय श्री गुरु की रहो । दिया सुमार्ग जैन ॥ १७ ॥

॥ श्री परमेष्टी गुण ॥

॥ त्रिभंगी-छंद ॥

श्रीनवकारं । जग जयकारं । शास्त्र सारं । हे श्रेष्टी ॥ जपो नित्य नरनारी । शुद्ध ध्यान धारी । मंत्र श्रेयकारी । प्रमेष्टी ॥ त्रीकरण शुद्ध ध्यावे । पाप पलावे । चिन्तित थावे । देसारं ॥ अहो भव्य हितं । एकण चितं । समरोनित्यं ।नवकारं ॥ १ ॥ श्री अरिहंता । जगत् महंता । इन्द्र नमंता । चरणारी ॥ उत्तम गुण बारे । पावे ज्यारे । दोष अठारे । दीये टारी ॥ महश्र वसु लक्षण । रची तेज तिक्षण । करे तत्क्षण । शिवद्वारं॥अहो॥२॥ हुये अविकारी । कर्म रिपु मारी । त्रिदुःख टारी । सिद्ध सिरी ॥ अलख अरूपं । विश्व के भूपं । सुख अनूपं । ज्ञान हिरी ॥ अष्ट गुणधारी । एकतीस अतिसारी । जक्त मे अहारी । जप सारं ॥ अहो ॥ ३ ॥गण नायक ज्ञाता । समकित दाता। सूरी पद पाता । गुण गेहरा ॥ गुण छतीसं । तज रागरीसं । चउ संघ ईसं । दिस चेहरा ॥ बड़े विचक्षण । दे शुद्ध शिक्षण । षट काय रक्षण । आचारं॥अ॥४॥ ज्ञानमें पूरा । चरचा में सूरा । पाषंडी दूरा । भगजावे ॥

अंग इग्यारा । उपांग बारा । षटमत सारा । सुणावे ॥ श्री उवज्झायं । संशय मिटायं । जिन मग ठायं । नार नार ॥ अ ॥ ५ ॥ संयम धारी । ममता वारी । करणी करारी । करता है ॥ प्रणामें समं । आतम दमं । परीषह खमं । करता है ॥षटकाय पाले । कर्म को जाले । शुद्ध मग हाले । अणगारं ॥ अ. ॥६॥ यह परम इष्टं । सब में श्रेष्टं । सुख उत्कृष्टं । देता है ॥ सिंह अही कुंजर । दव रण सागर । बन्ध जलोदर । हरता है ॥ दुरित पलावे । रोग शोग जावे । सब सुख पावे । जग मझारं ॥ अ. ॥ ७ ॥ समरते अटक. ॥ विधके कण्टक । छिनमें नष्टक । होजावे ॥ शत्रु विनाशे । मित्र उल्हासे । मिल भक्त आशे । पूरावे ॥ कहे अमोल अणगारं । नित्य नमस्कारं । देवो पद सारं । दातारं ॥अहो ॥ ८ ॥

॥ श्री अरिहंत स्तुति ॥

॥ मोतीदास छंद ॥

सदा जगनायक सहायक हंत, सुदायक बायक लायक वंत ॥ गुश्रेष्ठ विशेष्ठ सुज्येष्ठ कहंत, अहो अरिहंत करो सुख संत ॥ १॥ सुतात सुमात सुभ्रात सुजात । सुगात सुवात सुपात सुभात ॥ लंछन सुअष्ट सहस्र कहंत॥अहो.॥२॥विशाल सुभाल सुबाल अबाल, दयाल मयाल अजाल कृपाल ॥ सुमाल सुलाल भविक इच्छंत ॥ अहो. ॥३॥अखंड अडंड अचंड अतंड, अगंड अवंड असंड सुसंड॥ अफंड पछंड भये गुणवंत॥अहो.॥४॥महावीर गंभीर ध्यान सुस्थिर॥

अचीर विचीर अगीर सुगीर ॥ अपीर सुपीर सुबोध कहंत ॥ ॥अहो.॥५॥अरीदा विरीदा सत्रुदल पीस,अगीश सगीश सुणीश वरीश॥ अखेह अछेह अमेह रहंत ॥अहो ॥६॥उत्थापक पाप तर्थिकर आप॥ जपंत जिनंद वधंत प्रताप ॥अनंत गुणातम श्री भगवंत॥अहो.॥७॥ अनेह विनेह अगेह सुगेह, अमेह विमेह अदेह विदेह॥ अलेप सुलेप सदा दरमंत ॥ अहो. ॥ ८ ॥ नकर्म नभर्म नगर्म उछाह, अक्रोध अमान अमाय अदाह ॥ अराग असोग अभोग तरंत ॥ अहो.॥९॥सुज्ञान अराध समाधि प्रणाम,विहार करंत भवी हित काम॥ भजंत सुरासुर स्वामि महंत॥अहो.॥१०॥ कहंत सदा उपदेश रसाल॥ हृठंत मिथ्यातम बंधन जाल ॥ अराधक होय तिरंत अनंत ॥ अहो. ॥११॥ रटंत कटंत दुरीत समस्त, लहंत सुखामृत वंछित वस्त ॥ उद्धारक वृद्ध सहित हितवंत ॥ अहो ॥१२॥ त्रिजोग निवार वसे शिव लोक, चरणांबुज धोक,दे रिख तिलोक॥ विलोक सुदेव जपो जग कंत॥ अहो ॥ ॥ १३ ॥ इति ॥

॥ श्री सिद्धाष्टक स्तुति ॥

॥ नाराच छन्द ॥

प्रसिद्ध सिद्ध सिव कंत,संत श्रेष्ट देव हो॥झटक दी सकल पाप, स्वेय नीरलेव हो ॥ कलंक डंक बंक अंक, रंच ना नडंबरं ॥ कृपा करो दयानिधी, ऋद्धि वृद्धी सिद्धी करं ॥ १ ॥ टेक ॥

अरूप रूप स्व अनूप, भूपभू. अखंड हो ॥ अफंड भंड डंड गंड, छंडके प्रचंड हो ॥ अनंत ज्ञानरूप तोय, पाप मेल संहरं ॥कृपा.॥२॥ प्रमाद क्रोध मान माय, लोभ लेश सो नहीं ॥ अनंत काल स्थीत है, अनंत सूख रासही ॥ अष्ट महा गुण मूल, त्वं सदा सुसंवरं ॥ कृपा ॥ ३ ॥ विकार स्वार दूर टाल, राग द्वेष संहऱ्या ॥ अगाध जो भवोदधि सो धर्मपोतथी तऱ्या ॥ प्रत्येक एकमेक आप, व्याप हो गुणागरं ॥ कृपा ॥ ४ ॥ अलेख रेख रुप नाहीं, पापफंद बंध सो ॥ आहार भार हास्य त्रास, नाश काम धंधसो॥अभंग ज्ञान संग चंग, गुप्त ना उजागरं ॥ कृपा ॥ ५ ॥ अलोक लोक द्रव्य क्षेत्र, काल भाव जाण हो ॥ त्रिलोकनाथ त्रात भ्रात, मंद्र चंद्र भाण हो ॥ विनाश किया रोग सोग, भोग भाव भंङ्गुरं ॥ कृपा० ॥ ६ ॥ जपंत जाप आग नाग, सिंह चोर सो हटे ॥ कटंत बंध द्रव्य भाव, रोग दुःख जे मिटे॥ विषय कषाय लाय जाय, आय सूख सागरं ॥ कृपा. ॥ ७ ॥ तिलोकरिख हस्त जोड, करत नित्य वंदना ॥ निरोग बोध लाभ चहाय, कर्म की निकंदना॥ नहीं जगत्माही ओर, आपसो विश्वंभरं ॥ कृपा ॥८॥नित्यमेव ए सिद्धाष्टकं, पठंति जे मनोहरं॥ विज्ञान मुक्ति सुख द्रव्य, भाव होत नागरं ॥नान्यत्र देवलोक मांही, सिद्धस्थान उपरं ॥ कृपा. ॥ ९ ॥

दोहा:—अजर अमर अविकार हो, सिद्ध निरंजन देव ॥ किंकर पर करुणा करो, दीजो अविचल सेव ॥ १० ॥ इति ॥

॥ श्री आचार्य स्तुति ॥

॥ मरहट्टा छंद ॥

जे ज्ञान महंता, समकितवंता, चारितर तपधार ॥ उत्कृष्टे भरणी, भवजल तरणी, पंचम वीर्य आचार॥स्वयं पाले पलावे, पाप हटावे, उपदेशे नर नार॥ गणिवर पद ध्यांजे, नित्य नमीजे, कीजे सफल जमार॥१॥ ॥ टेक ॥ सब हिंसा टाले, दया सो पाले, निरवद्य बोले विचार ॥ दत्त व्रत ब्रह्मधारी, परिग्रह टारी, पंच आम शुद्ध धार ॥ मुरत चक्खु नासा, रसना फासा, इंद्रीय जीतन हार ॥ गणि. ॥२॥ पशु पंडग नारी, थानक टारी, नारिकथा परिहार॥अंग निरखवा वारे, आसन टारे, सुणे न शब्द विकार॥क्रीडा न संभारे, सरस रस टारे, करे नहीं अधिको आहार ॥ गणि. ॥ ३ ॥ अंगशोभा टाले, याड ए पाले, क्रोध न करे लगार॥अभिमान तजंता, कपट वरजंता, ममतादी सब मार। काषाय एह चारी, महा दुःखकारी, भरमावे संसार॥ गणि ॥ ४ ॥ कर्मनका फंदा, दूर निकंदा, चाले इर्या विहार ॥ निरवद्य मुख वाणी, ले शुद्ध अन्नपाणी, दोष बयालिस टार ॥ जयणा करि लेवे, विधिसे परठेवे, समिती ए सुखकार ॥गणि. ॥५॥ मन वचन काया, गुप्ति त्रिहुं ठाया, गुण छत्तीस उदार ॥ शुद्धकिरिया धारी, ज्ञान भंडारी, करता पर उपकार ॥उपदेश सुनावे, भर्म उडावे, तारे भवि नर नार ॥ गणि. ॥ ६ ॥ वर रूप दीपंता,

महाबलवंता, वाणी अमृत धार ॥ अक्षर शुद्ध बोले, सात् नय खोले, डोले नहीं लगार ॥ विद्या निधाना, युगप्रधाना, गुणगण रत्नाकार. ॥ गणि. ॥७॥ कुपक्ष नहीं ताणे, सब मत जाणें, अन्य मतको परिहार॥ शीतल शशि जोपे, रवि जिम दीपे, साथे बहु अनगार ॥ पाखंड हटावे, जैन दिपावे, पाले संजम भार ॥ गणि. ॥ ८ ॥ आचार्य नाणी, गुणनिधि स्वाणी, आचारज सुखकार॥समरण सुखकारी, महिमा भारी, अरि करी भय परिहार ॥ दुःख जावे दूर, संकट चूरे, पूरण रहे भंडार ॥ गणि. ॥ ९॥ आचार्य स्वामि, अंतरजामी, सिद्ध पदके दातार ॥ गणिवर गुण गावे, पार न पावे, रसना रचे हजार ॥ अलप गुण गाया, मन समझाया, तिलोक करे नमस्कार ॥ गणि० ॥ १० ॥ संवत उगणीसे, वर्ष चोतीसे, वैशाख पूनम शशि वार ॥ जो अपशे भावे, सोही सुख पावे, छंद मरहठा धार ॥ प्राते उठ वंदे, दुरित निकंदे, रिद्ध सिद्ध जय जयकार ॥ गणि० ॥ ११ ॥ इति ॥

॥ श्री उपाध्याय स्तुति ॥

॥ हाटकी छन्द ॥

संसार सागर, दुःख आगर, जाणे नागर, धीर ए, ततकाल त्यागे, दूर भागे, शूर सागे, वीर ए ॥ मुनिराज पासे

म्हे दीक्षा, ज्ञान शिक्षा, आप ए ॥ चउथे पद उवज्झाय सुखकर, कीजे नित्य प्रति जाप ए ॥ १ ॥ टेक ॥ आचारंग चंग, अंग सुयगड, ठाणायंग सुखकार ए ॥ चउथो समवायांग नीको, भगवइ ज्ञाता सार ए ॥ उपासक अंतगड, अंग अष्टम, अनुत्तरो-ववाइ थाप ए ॥ चउथे. ॥ २ ॥ प्रश्न व्याकरण, भण्या पूरण, अंग विपाक, रसाल ए ॥ गुरुदेव पासे, अर्थ धार्‍या, चउदे दूषण टाल ए ॥ ग्यारा अंग, संगो-पांग, शील्या अति, चित्त चाप ए ॥ चउ. ॥ ३ ॥ उत्पात अग्गी, वीर्य तृतीय, अस्ति ज्ञान सत्त जाणीए ॥ आतम प्रवाद, अरु कर्म पूरव, प्रत्याख्यान वखाणीए ॥ विद्या अवंध, प्रवाद पूरव, धारंत तोहि न धाप ए ॥ चउ. ॥४ ॥ प्राण क्रिया, विशाल पूरव, लोकबिंदु, सार ए ॥ चतुर्दश पूरव, अंग ग्यारा, पाठ अर्थ, सुधार ए॥ अभिमान तज्ञ कहे, वेण चारु, नहिं करत कूडी थाप ए ॥ चउ. ॥ ५ ॥ भविकजन जो, प्रश्न पूछे, नव पदारथ, भाय ए ॥ सूक्ष्म बादर, द्रव्य पटनो, पूछे कोई, प्रस्ताव ए ॥ तव देत उत्तर, शोध सुत्तर, दे जिनागम, छाप ए ॥ चऊ. ॥ ६ ॥ ज्ञानदाता, धर्मराता, बोले निरवद्य, वेण ए ॥ मिथ्यात खंडण, जैन मंडण, पाले जिनवर, केण ए ॥ गणिपद्में, जोग सोहे, नामकर्म, आताप ए ॥ चउ. ॥ ७ ॥ महाव्रत पाले, दोष टाले, चाले इरजा, शोध ए ॥ कर्मरूपी शत्रुघातक, परम शूरा, जोध ए ॥ मन वचन काया, करण तीनुं,

करत नहीं, सो पाप ए ॥ चउ. ॥ ८ ॥ उपाध्याय भक्ति, करत जुक्ति, ज्ञानागर, जीवत ए ॥ मिथ्यात जावे, बोध आवे, थावे शिवपुर, कंत ए ॥ जैनमारग, तरण तारण, अवर सव. कलाप ए ॥ चउ. ९ ॥ जिन नहीं, जिनराज सरखा, वेण सत, सुखकार ए ॥ देश जिनपद, मांहि विचरे, करता पर, उपकार ए ॥ मिथ्यात्व अंधा, कर्म फंदा, ज्ञान असि कर, काप ए ॥ चउ. ॥ १० ॥ भवप्राणी तारे, संशय टारे, यहू सूत्र, विस्तार ए ॥ उत्तराध्ययन, इगियारमां से, कह्यो वर्णव, जहार ए ॥ तिलोक रिख, कर जोडि वंदे, सदा पुण्य प्रताप ए ॥ चउ. ॥ ११ ॥ इति ॥

॥ श्री साधु स्तुति ॥

॥ कामनी मोहनानी छन्द ॥

साधु निर्ग्रंथने वंदना कीजीए, मानवको भव सफल करीजीए ॥ धन्य जे संत गुणवंत सोभागिया, भोग किंपाकसा जाणके त्यागीया ॥ १ ॥ पंच महाव्रत समकित पालता, चार कषाय दावानल टालता ॥ भाव सचे मुनि वंदूं में नित्त ए, कर्ण सचे जोग सुके सुकित्तए ॥ २ ॥ धन्य जे क्षमा वैरागमें राचिया, द्रव्य छ नव पदारथ जाचिया ॥ मन वचन काया सम धारता, ज्ञान दर्शन चरण शुद्ध सारता ॥ ३ ॥समभावे करी वेदना खमता, मरण

आया थकी जे करे समता ॥ गुण सत्तावीस संयम जे धरे, राग
अने द्वेष जे किंचित नहीं करे ॥ ४ ॥ तीन ही शल्य सो मूल
निकंदिया, मोहनी कर्मसूं ते नहीं फांदिया ॥ नहीं करे विकथा
धर्म सुध्यावता, शुक्ल ध्यान धर कर्म खपावता ॥ ५ ॥ दया
छकायकी पालता जे मुनि, क्रिया भेद मद नहीं करे महागुणी ॥
नव वाड मुनिधर्म पाले अखंड ए, सकल मिथ्यात्वको छंड्यो
अफंड ए ॥ ६ ॥ बावीस परिसह जीतिया ते सही, प्राणरक्षक विचरे मही ॥ बावन आनाचीरण टालता, चोरासी
उपमायुक्त वे चालता ॥ ७ ॥ एक एक चऊथादि षष्ठमासी करे,
एकावली रतनावली आदरे ॥ गुण रतन संवच्छर धारता,
प्रतिमादिक संलेखना अहारता ॥ ८ ॥ तप ऊणोदरी छे अति
मोटको, भिक्षाचरी रसत्याग नहीं छोटको ॥ कायकिलेस ने
पडिसंलीनता, षष्ठ तप धारके तन करे क्षीणता
॥ ९ ॥ प्रायश्चित विनय वैयावच्च जे करे, सज्झाय
ध्यान काउसग्ग आदरे ॥ प्रच्छन्न षट् तप साधे अणगार ए,
टाले सही जिके कर्मको खार ए ॥ १० ॥ चंद्र ज्यूं सोमदृष्टी
करी दीपता, तपतेजे रविकिरणनें जीपता ॥ सागर जेम गंभीर
कहीजीए, कुंजर जेम धीरजता लीजीए ॥ ११ ॥ लब्धि पाया
भली प्रगट तपस्या फली, खेलोसही जलोसही प्रसिद्ध प्रगटी भली ॥
विप्पोसही केइ आमोसही पतिया, सव्वोसही कोटबुद्धि केइ

मत्तिया ॥ १२ ॥ बीजबुद्धी वली पदानुसरिया, एकेक मुनिवर वैक्रय धारिया ॥ चारण विज्जाहरा मुनिगजिया, ऋजु विपुलमति संशय भांजिया ॥१३॥ एकेक मति श्रुति अवधी धणी, मनःपर्यव केवल शोभा घणी ॥ केवली दोय क्रोडी सुखकार ए, नवक्रोडी उत्कृष्ट विचार ए, ॥ १४ ॥ जघन्य दोय सहस्त्र क्रोडी जती, सहस्त्र प्रत्येक उत्कृष्ट पद संयती ॥ आज्ञा जिनंदकी पालता जे सदा॥ जगतमें सकल छोडे आपदा ॥१५॥ दुरित टले मुनि नामसुं जपता, तम दलित होवे जिम रवि तपता ॥ कर्म शत्रु जीके करत निकंदना, रिख तिलोकजी करे तस वंदना ॥ १६ ॥ संवत उगणीशे तीस मझारए; ज्येष्ट आदि छट सूरज वारए ॥ कामनी मोहना छंदमें जाणीए, सुखवेली जेले पुष्कर मानीए ॥ १७ ॥ **कलश** ॥ इम ऋद्धि वृद्धि समृद्धि कारण, जपो मुनिवर नामसु ॥ धर्मदेव महन्त प्रणमु पुण्य सुगुरु पसायसु ॥ एम जाणी सेवो प्राणी सुसाधु मन खंत ए ॥ ते लहे शिवपद रूप निश्चय, निर्भय शिवसुख संत ए ॥ १ ॥ इति ॥

॥ श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ स्तोत्रम् ॥

किंकर्पूरमयं सुधारसमयं किं चन्द्ररोचिर्मयं । किं लावण्यमयं महा माणिमयं कारुण्य केलिमयं ॥ विश्वानन्दमयं महोदयमयं शोभामय

चिन्मयं । शुक्लध्यानमयं वपुर्जिनपते र्भूयाद्भवालम्बनम् ॥ १ ॥
पातालं कलयन् धरां धवलयन्नाकाश मापूरयन् । दिक्चक्रं क्रमयन्
सुरासुर नरश्रेणिं च विस्मापयन् ॥ ब्रह्माण्डं सुखयन् जलनिजलधेः
फेनच्छलालोलयन् । श्रीचिन्तामणि पार्श्व संभवयशो हंसश्चिरं
राजते ॥ २ ॥ पुण्यानां विपणिस्तमोदिनमणिः कामेभ कुम्भेश्रृणि ।
मोक्षेनिस्सरणिः सुरेन्द्रकरिणी ज्योतिः प्रकाशारणिः ॥ दाने देव
मणिर्नतोत्तम जनश्रेणिः कृपासारिणी । विश्वानन्द सुधा घृणर्भव-
भिदे श्रीपार्श्वचिन्तामणिः ॥ ३ ॥ श्रीचिन्तामणिपार्श्व विश्वजनता
सञ्जीवनस्त्वं मया । दृष्ट स्तात ततः श्रियः समभवन्ना शक्रमाच-
क्रिणः ॥ मुक्तिः क्रीडति हस्तयोर्बहुविधं सिद्धं मनोवांछितं ।
दुर्दैवं दुरितंच दुर्दिन भयं कष्टं प्रणष्टं मम ॥ ४ ॥ यस्य प्रौढतम
प्रताप तपनः प्रोद्दामधामा जगज्जङ्घालः । कलिकाल केलिदलनो
मोहान्ध विध्वंसकः ॥ नित्योद्योतपदं समस्त कमला केलिगृहं
राजते । स श्री पार्श्वजिनो जनहित कृते चिन्तामणिः पातु मम्
॥ ५ ॥ विश्व व्यापितमो हिनस्ति तरणिर्बालोपि कल्पांकुरे ।
दारिद्राणि गजवलीं हरिं शिशुः काष्टानि वह्नेः कणः ॥ पीयूषस्य
लवोपि रोग निवहं यद्व तथा ते विभो । मूर्तिः स्फूर्तिमती सती
त्रिजगती कष्टानि हर्तुं क्षमा ॥ ६ ॥ श्रीचिन्तामणि मंत्र मोङ्कृति-
युतं ह्रींकार साराश्रितं । श्रीमर्हं नमिऊण पास कलितं त्रैलोक्य
वश्यावहम् ॥ द्वेधा भूत विषापहं विषहरं श्रेयः प्रभावाश्रयं ।

सोल्लासं वसहाङ्कितं जिनपुल्लिङ्गा नन्ददं देहिनाम् ॥ ७ ॥ ऱ्हीं
ॐ श्री कारवरं नमोक्षर परं ध्यायन्तिये योगिनो । हृत्पद्मे विनिवेश्य
पार्श्वमधिपं चिन्तामणि संज्ञकम् ॥ भाले वाम भुजेच नाभिकरयो
र्भूयो भुजे दक्षिणे । पश्चादष्टदलेषु ते शिवपदं द्वित्रैर्भवैर्यान्त्यहो ॥
८ ॥ नो रोगा नैव शोका न कलह कलना नारिमारि प्रचारा ।
नैवाधिर्नो समाधिर्नच दरदुरिते दुष्ट दारिद्रतानो ॥ नो शाकिन्यो
ग्रहानो नहरिकरि गणा व्याल वैतालजाला । जायन्ते पार्श्वचिन्ता-
मणि मतिवशतः प्राणिनां भक्तिभाजनम् ॥ ९ ॥ गीर्वाण द्रुमधेनु
कुम्भ मणय स्तस्याङ्गणे रङ्गिणो । देवा दानव मानवाः सविनयं
तस्मै हित ध्यायिनः ॥ लक्ष्मी तस्यवशा वशेव गुणिनां ब्रह्माण्ड
संस्थायिनी । श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ मनिशं संस्तौतिया ध्यायते
॥ १० ॥ इतिजिनपति पार्श्व पार्श्वपार्श्वाख्ययक्षः । प्रदलित दुरितौघः
प्रीणित प्राणी सार्थः । त्रिभुवन जनवांछादान चिन्तामणिकः ।
शिवपद तरुबीजं बोधिबीजं ददातु ॥ ११ ॥ इति ॥



शान्तिप्रकाश प्रारम्भ

॥ प्रार्थना अङ्ग ॥ दोहा

प्रेम सहित वन्दों प्रथम, जिन पद कमल अनूप।
जाके सुमरत अधम नर, होवत शांत स्वरूप ॥ १ ॥
तुम शरणै आयो प्रभू, राखो लेओ निज टेक।
निर्विकल्प मम सिद्धजी; देवो विमल विवेक ॥ २ ॥
करू वन्दना भाव युत; त्रिविध जोग थिर धार।
रतन रतन सम देव मुझ, ज्ञान जवाहर सार ॥ ३ ॥
उपाध्याय अध्ययन श्रुति; निसदिन करत अभ्यास।
दीन बंधु मुज दीजीये, सम दम ज्ञान विलास ॥ ४ ॥
सो साधु थाया हरो, कर्म शत्रु रणजीत।
निपुणजो हरी ज्यों लख्यो, आतम रतन पुनीत ॥५॥
अधिक प्रीय नव रसन में, है रस शान्ति विशेष।
स्थाई भाव निर्वेदसे, मेटो सकल क्लेश ॥ ६ ॥
चीकत्समती अभिलाश अति, कपट क्रिया गुण चोर।
मैं चाहत कछु शांत रस, तुम से करो निहोर ॥ ७ ॥
कांपे जांचो जायके, तुम सम नहिं दातार।
करुणा निधी किरपा करो; दीजे शान्ति विचार ॥८॥

मैं गुलाम हौं रावरो, मेरो विगरत काज।
ताहि सुधार बनि रहै; मेरी तेरी लाज ॥ ९ ॥
शांन्ति छयों निरखत रहूं, जांचू नहीं कछु और।
अरजी हुकुम चढ़ायदो; पर्‍यो रहूं तुम पौर ॥ १० ॥
जिहीं गुणते खुश होहुं तुम, सो गुण नहीं लवलेश।
तुम चरणन आश्रित रहूं; सो बुद्धि देहु जिनेश ॥११॥
तलपत दुखिया मैं अति, पलक परत नहीं चैन।
अब सुदृष्टि करि निरखिये, ढीले रहे बनै न ॥ १२ ॥
यह सम्बन्ध भलो बन्यो, हम तुमसों सर्वज्ञ।
त्यागै ताहि न संग रखे, पिता पुत्र लखि अज्ञ॥१३॥
मेटहु कठिन क्लेश तुम, परमातम परमेश।
दीन जानिके बकसिये, दिन दिन ज्ञान विशेष ॥१४॥
कृपा करौ निर्बुद्धि पै, लखूं ज्यूं अनुभव रीति।
अशुभ और शुभ देखिकै, करूं न कबहुं प्रीति॥१५॥
सब प्रकार धनवन्त हौ, सुनौ गरीब निवाज।
आरत रुद्र कुध्यान ते, बकसि २ महाराज ॥ १६ ॥
धर्म शुक्ल ध्यावत रहूं, दोय ध्यान सुखकार।
या जग ममता उदधी तैं, दीजे पार उतार ॥ १७।
करुणा करिके मेटिये, विषय वासना रोग
मैं कुपथी वेदन प्रबल, लख मन जोग अजोग ॥१८॥

मैं गरजी अरजी करूं, सुनिहौ जग-प्रतिपाल ।
चाह सनाये दासकूं, यह दुःख दीजे टाल ॥ १९ ॥
प्रभु तुम सनमुख होरहुं, जग को देऊं पूठ ।
कृपादृष्टि ऐसी करो, ज्यूं भव जावे छूट ॥ २० ॥
मैंने जे कुकरम किये, देखत हैं सब तो हि ।
महर करो ज्यूं दीन पै, फेर न दुःख दे मोहि ॥२१॥
विपति रही मो घेरकें, सुनि न अजहुं पुकार ।
मेरी विरियां नाथ तुम, कहां लगाई वार ॥ २२ ॥
ऐसी विरियां मैं कहां, टरि गये दीन दयाल ।
विना कह्यां कैसे रहुं अपनो करो प्रतिपाल ॥ २३ ॥
जो कहलाऊं और पै, मिटै न मम उरझार ।
मेरी तेरे सामने, मिटसी मनकी रार ॥ २४ ॥
दुष्ट अनेक उधारीके, थकि रहे क्या दयाल ।
औरे २ तारिये, मेरा भी लखि हाल ॥ २५ ॥

॥ अथ राग निवारण अंग ॥

अरे जीव भव वन विषै, तेरा कवन सहाय ।
जिन के कारण पचि रह्या, तेरो तेरे नांय ॥ २६ ॥

संसारी को देखिले, सुखी न एक लगार।
अब तौ पीछा छोडिदे, मति धर सिर पै भार॥ २७॥
झूठे जगके कारणे, तू मति कर्म बंधाय।
तूं तौ रीताही रहै, धन पैलाही खाय॥ २८॥
तन धन संपति पायकै, मगन न होय मन मांय।
कैसे सुखिया होयगा, सांचे लाय लगाय॥ २९॥
ठाठ देख भूले मती, ए पुद्गल परयाय।
देखत देखत थांहरै, जासी थिर न रहाय॥ ३०॥
लूटेंगे ज्ञानादि धन, ठग सम ये संसार।
मीठे वचन उचारिकै, मो फांसी गल डार॥ ३१॥
किसौ भूत तोकों लग्यो, करै न तनक विचार।
ना मानै सौ परखिले; मतलब को संसार॥ ३२॥
काया उपर थांहरै; सब सूं अधिकी प्रीत।
याती पडले मसान में; देगी दगो निचीत॥ ३३॥
विषय दुखन को सुख गिनैं; कहुं कहां लगि भूल।
आंख छतां अंध हुवा; जाणपणा में धूल॥ ३४॥
नित प्रति दीखतही रहैं; उदै अस्त गति भान।
अजहुं न ज्ञान भयो कहूं; तूंतौ बडो अयान॥ ३५॥
किस के कहै निचिंत तु; सिर पर फिरै जु काल।
बांधे है तो बांधलै; पानी पहिलां पाल॥ ३६॥

आया सो सबही गया; अवतारादि विशेष।
तूं भी यौंही जायगा; इण में मीन न मेष ॥ ३७ ॥
ऐसा अवसर फिर ना मिलै; अपनो मनुष्य सार।
चुकने नाम चुकायदे; अब मनि राम्ब उधार ॥ ३८ ॥
कैसें गाफिल हो रहा; विबड़ा आनकरार;
निपजी खेती देय क्यूं; बाड़ी सबै गंवार ॥ ३९ ॥
धर्म विहार कियो नहीं; कीनो विषय विहार।
गांठ खाय रीते चले; आकै जग हटवार ॥ ४० ॥
काज करत पर घरन के; अपना काज बिगार।
सीत निवारै जगत का; अपनी झूंपरी बार ॥ ४१ ॥
नहिं विचार तैंने किया; करना था क्या काज।
उदै होयगा कर्म फल; तब उपजैगी लाज ॥ ४२ ॥
झूठे संसारीन की, छूटैगी जब लाज।
इनसों अलगा होयगा, तब सुधरैगा काज ॥ ४३ ॥
अपणी पूंजी सूं करो, निश्चल कार विहार।
बांध्या सोही भोगलै, मति कर और उधार ॥ ४४ ॥
नया कर्म ऋण काढिके; करसी कार विहार।
देणां पडसी पार का, किम होसी छुटकार ॥ ४५ ॥
विषय भोग किंपाक सम, लखि दुःख फल परिणाम।
जब विरक्त तूं होयगा, तब सुधरैगा काम ॥ ४६ ॥

मेरे मन मेरे पथिक तु न जाय वह ठौर ।
बटमारा पांचुं जहां, करे साह कुं चोर ॥ ४७ ॥
आरंभ विषय कषाय कुं, कीनी बहुत हि बार ।
कछु कारज सरिया नहीं, उलटा हुवा खुवार ॥ ४८ ॥
बयारु सजा में सदा, सुने निपुन चित लाग ।
गुरु समझावें कठिन सुं, उपजै तउ न वैराग ॥ ४९ ॥
मैर हुवा जो कुछ हुवा, अब करनो नहिं जोग ।
विना विचार्या तैं किया, ताकाही फल भोग ॥ ५० ॥

॥ द्वेष निवारण अंग ॥

बुरा कहे कोउ तो भणी, तो तू भलाजु मान ।
बूरा मीठा होय है; सब बनि हैं पकवान ॥ ५१ ॥
कटु तिक्षण अति विष भरी; गाली शस्त्र समान ।
अशुभ कर्म गुम्मड भियो; यों जिय सुलटी जान ॥ ५२ ॥
कटुक वचन को कहदिया; लगेजु दिल में तीर ।
सम दृष्टि यूं समझ ले; मोजान्या अति वीर ॥ ५३ ॥
वैरी होता तो कबहुं; नाहिं कहता कटु बात ।
सज्जन दीसै मांहिरा, कज लाग्वि कटुक बचान ॥ ५४ ॥
औगुन सुनिकै आपणा; रेमन सुलटी धार ।
मौ गरीब कुं जानिके; लीना बोझ उतार ॥ ५५ ॥

मैं भूल्यो शुभ राह कूं, उसने दई बनाय
दुरजन जानि पर नहीं, सज्जन सो दरसाय ॥ ५६ ॥
अस्त ज्ञान सूरज हुवा; मैं भूल्यो निज जाह ।
निंदा रूप मशाल ले; इने दिखाइ राह ॥ ५७ ॥
सुनि निंदक के वचन कूं; चित मानि करै उचाट ।
यह दुर्गंधित पवन अनि, वहतीं कूं मन दाट ॥ ५८ ॥
कुवचन शर क्या करे सैक, तूं होजा पाषाना ।
तेरा कछु बिगरै नहीं, याकाही अपमान ॥ ५९ ॥
कुवचन गोली के लगे, जो ले मन कूं मार ।
आप हि ठंडी होयगी, हो जो अतिलगार ॥ ६० ॥
नैंने उपरसूं कही, मैं तो समझी ठेट।
सबही खटका मिटगया, एक रह गया पेट ॥ ६१ ॥
रे चेतन सुलटी समझ, तेरा सुधर्या काज ।
कुवचन घरघर थांहरी, इणनें सौंपी आज ॥ ६२ ॥
होगी सौंही नीसरे, वस्तु भरी जिहि माहिं ।
याका गाहक मति बनै, त रे लायक नहिं ॥ ६३ ॥
अपना अवगुण सुण करी, मति माने जिय रीस ।
मन में तूं यूं समझले, मुझको दे आसीस ॥ ६४ ॥
क्रोध अग्नि दिल मति लगा, सुन अजथार्थ बोल ।
क्षमा रूप जल छिटकिये, नेक न लागे मोल ॥ ६५ ॥

दुरजन चुप होवें नाहीं, तू तौ छिन चुप साधि।
तृन बिन परिहै अगनि कहुं, आपहि होय समाधि॥६६॥
तूं तृण सम कटु वचन सुनि, क्रोध अग्नि मति दाझ।
उपल नीर सम करहु मन; तब मिलि है शिवराज॥६७॥
आई गई करि गालि कूं, क्रोध चंडाल समान।
नैत्र पिछान चंडालनी, पल्लो पकड़ै आन॥६८॥
प्रभु सहाय नहिं होहिगे, रे जिय सबौ जान।
क्रोध करी ज्यूं होगयो, साधु रजक समान॥६९॥
आतम वस्त्र मैला लख्यौ, इणनें दीना धोय।
कटुक वचन श्रावन करी, निबल जानिके मोय॥७०
जोहरि होके मति करे, कुंजरौ के संग रार।
रतन बिनरसी थांहरा, भाजौ सठ गंवार॥७१॥
साला की गाली दई, ए बिचार चित टारी।
भगनी सम इणकी त्रिया, इस समझो मन धारी॥७२॥
कृतघनी बनतो नहीं, दई गार इण मोय।
इस आतम सीतल करो, मम उधार तब होय॥७३
गारी एकही होत है, बोलत होत अनेक।
रे जिय तूं बोले नहीं, तौ वही एककी एक॥७४॥
अनंत काल पहले प्रभु, देख रखे यह भाय।
परिहै कटु वच श्रवन में, ते किमि टाले जाय॥७५॥

॥ अथ धैर्य अङ्ग ॥

अय दिल चाहे परम पद, नर धीरज गुणधार ।
निंदा स्तुति अरु रिपु प्रिय, एकहि दृष्टि निहार ॥७६॥
धीरज धरि भ्रम को तजो, ए पुदगल के ख्याल ।
पर परछांही पर हरी, तूंतो चेतन लाल ॥ ७७ ॥
चंचलता कूं छांडीदे, धीरज की कर हाट ।
कर विहार गुन माल को, ज्यूं होवे बहु ठाट ॥ ७८ ॥
निज गुन में जिय ठहरि तूं, पर गुन पद मत धार ।
पर रमणी सूं राचिकर, मन कहलावे जार ॥ ७९ ॥
नव रजनी नासै नहीं, दीपक की कहि बात ।
पूरण ज्ञान उद्योत विन, हृदे भरम नहीं जात ॥ ८० ॥
यथा लाभ संतोष करि, कछून चाहै दिल खींच ।
या विध सुख अति अनुभवै, तो न फसै दुख कीच ॥८१॥
मोहि जानत दुख विकल पन, अथवा सुख सरूप ।
गिनैं दुहूं सम धीर धरि, तौ न परै भवकूप ॥ ८२ ॥
अपने २ गुनन में, थिरहै सबही वस्त ॥
पण थिर करले अपन कूं, तो सुख लहै समस्त ॥८३॥
दुःख सुख दोनुं फिरत हैं, धूप छांह ज्यों मित्त ।
हरष सोक क्यों करत है, धीरज धार नचित्त ॥ ८४

अणहोणी होवे नहीं, होणी नांहीं टलान ।
दीखी परसी आगले, जो होली ज्या स्थान ॥ ८५ ॥
चाह किये कछु ना मिले, करिके जहां तहां देख ।
चाह छोडी धीरज धरहु, पग पग मिले विसेष ॥ ८६
सुनि उलझे मनि रे जिया, करी विचार चुप साध ।
यही अमोलक औषधी, मेटे भव दुख व्याध ॥ ८७ ॥
रे चेतन संसार लखि, दृढ करी नेक विचार ।
जैसी दे वैसी मिले, कूवा की गुजार ॥ ८८ ॥
चंचलता कूं छोडके, काटि मोह गल फांस ।
सम दम यम दृढता किये, निज गुण होय प्रकास ॥८९॥
अभिलाषा कूं त्यागिके, मनकूं राखि मजबूत ।
जब कछु सूजे अगम की, यह सांची करतूत ॥९०॥
वो तो यहां ही वस्तु है, जाकी तेरे चहाय ।
क्षण इक धीरज धारि ले, सहजेही मिल जाय॥ ९१ ॥
मति करि परगुन मे रमन, ज्युं न लगे गल मोख ।
निश्चल रह निज गुणन में, आपहि होगी मोख ॥ ९२ ।
निश्चलता सुं होयगा, यह जीव ब्रह्म समान ।
तृण ही का घृत होतहे, गाय चरें पय पान ॥९३ ।
जो तूं चाहे अमर पद, करि दृढता अख्त्यार ।
बाल न बांका होयगा, जीवन ही दिल मार ॥ ९४

धीरज गुण धारण किये, सबही दुख कटजाय ॥
जैसे ठंडे लोहे सें, तत्ता लोह कटाय ॥ ९५ ॥
जल जिम निर्मल मधुर मृदु, करत नस को अंत ।
इम धीरज गुण ज्यार लखि, क्यों न गहै बुधवंत ॥९६॥
कला घटत अरु बढ़त है, नहिं ससि मंडल जान ।
जनम मरण गति देह की, युं लखि धीरज ठान ॥ ९७॥
सुख दुख दोनों एकसें, है समझन को फेर ।
एक शब्द दो अर्थ ज्युं, लाख टका को सेर ॥ ९८ ॥
सुख दुख दोउ येदे मनि, येदे तो सम भाय ।
जैसे मकरी जालको, पसरे अरु खाजाय ॥९९ ॥
समता कूं धारण किये, क्यौंन उठे मन लहर ॥
वाणी सुणि कलापीकी, स्पांपाहदा जहर ॥ १०० ॥

॥ अनुभव तथा विचार ज्ञान अंग ॥

कूकस विषय विकार सम, मनि भाखि मुढ गंवार ॥
अनुभव रस तु चाखिलै; गुरु मुख करि निरधार ॥१०१॥
पाठ किये तें एक गुन, अनुभव किये हजार ।
तातें मन कूं रोकिकै, क्यौंन करै विचार ॥ १०२ ॥
किये पाठ अनुभव विना, मिटे न भीतर पाप ॥
बाहिर सीसी धोय कै, करी चहै तूं साफ ॥ १०३ ॥

अल्प भार पाषान कौं; जिमि लागे जल मांहि ।
तिमि अनुभव बिन कर्म कौं, बहु बंधन कोऊ नांहि ॥ १०४ ॥
मन वचन तन थिरते हुवे, जो सुख अनुभव मांहि ॥
इन्द्र नरिंद्र फनेंद्र के: ना समान सुख नाहीं ॥ १०५ ॥
अनुभव से प्रभु मिलन है, अनुभव सुखका मूल ।
अनुभव चिंतामणी तजी, मनि मदके कहूं भूल ॥ १०६ ॥
अति अगाध संसार नद, विषय नीर गंभीर ।
अनुभव बिन पार न लहै, कोटि करहु तदबीर ॥ १०७ ॥
जिहि विचार तैं पायहै, मनकुं थिर सुख ठौर ।
ताकूं अनुभव जानिलें, अनुभव नहिं कछु और ॥ १०८ ॥
बिना विचारे जानके, तूं जंगलका रोझ ।
मिथ्या झूंठी बचन है, क्योंन करे अब खोज ॥ १०९ ॥
मन मतंग बस करन कूं, ज्ञानांकुस बिन धार ।
क्षमा थंभ सौं बांधिके, लज्या शृंखल डार ॥ ११० ॥
भ्रमतौ मन रवि टारले, ज्ञान मुकरके ध्यान ।
बिंदु सुभ उपयोग सैं, करम तूल की हान ॥ १११ ॥
सीसां सम संसार है, गुरु कृपा आदित्त ।
ज्ञान नेत्र बिन किम लखै, आपनपौ अपवित्त ॥ ११२
विषय वासना करत जो, आवे ज्ञान उजास ।
त्रेसठ काडन समय में. छिन में होय उजास ॥ ११३

जो तूं चाहे ज्ञान सुख, तौ विषयन मन फेर।
और जगह भटके मती, अपनेही में हेर ॥ १४ ॥
ज्ञान रूप दीपक कने, बचे न करम पतंग।
जो रह तौ दोनूनमें, झूंठो एक प्रसंग ॥ ११५ ॥
ज्ञान संचरे जिहिं समें, रहे न करम समाज
और न पंछी वहांटिके, जहां बसेरा बाज ॥ ११६ ॥
घर नहिं छूट्यो एकसो, छूट्या कर्म कुढंग।
ज्ञान गणां सत संगथी, देखो ठाणायंग ॥ ११७ ॥
क्षण इक ज्ञान विचारले, विषय दृष्टि को फेर।
तेरी मेरी त्यागदे, यों होवे सुरझेर ॥ ११८ ॥
अष्ट पहरढिग राखिले, ज्ञान स्वरूपी ढाल।
मोह अरीके विषय शर, लगे न वाकी भाल ॥ ११९
माया मोह निवारके, विषयन सों मन खींच।
जो सुख चाहे आपणा, रहे ज्ञानके बीच ॥ १२० ॥
भेद लहे बिन ज्ञानके, मनि सुसे ज्यूं स्वान।
लोक गडरिया चाल तजि, आपनपो पहचान ॥ १२१
जगत मोह फांसी प्रबल, कटै न और उपाय।
सत संगत करि ज्ञान की, सहज मुकत होजाय ॥१२२॥
कामधेनु अरु कल्पतरू, इण भव सुखदातार।
इण भव पर भव दुहुन में, ज्ञान करै निस्तार ॥१२३॥

बिच पारस अरू ज्ञान के, अंतर जानि महंत ।
यह लोहा कंचन करे, वह गुण देय अनंत ॥ १२४ ॥
प्रथम ज्ञान पीछे दया; यह जिन-मत को सार ।
ज्ञान सहित किरिया करो, तव उतरो भव पार ॥१२५॥
अति आलस परमादियो, भज्जुलाल मुझ नाम ।
ज्ञानोद्यम कछु ना हुवे, किम सुधरे मुझ काम ॥१२६॥
दरशण पिण निश्चल नहीं, नहीं निश्चल चारित्र ।
मन भ्रमतो निस दिन रहे, नहिं ठहरे एकत्र ॥१२७॥
ऐसी करी विचारना, रे जिय अवतो चेत ।
राग द्वेश पतला हुवे, ऐसा करि संकेत ॥ १२८ ॥
च्यारि चरण गुरु रतनजी, तासु भेद चौवीस ॥*
नामें भेदजु नेरवें, करी ज्ञान बकसीस ॥ १२९ ॥

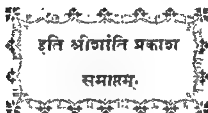
* १ रतनजी	९ रजीतन	१७ नजीरत
२ तरनजी	१० जीरतन	१८ जीनरत
३ रनतजी	११ तजीरन	१९ ननजीर
४ नरतजी	१२ जीतरन	२० नतजीर
५ तनरजी	१३ रनजीत	२१ तजीनर
६ नतरजी	१४ नरजीत	२२ जीतनर
७ रतजीन	१५ रजीनत	२३ नजीतर
८ तरजीन	१६ जीरनत	२४ जीनतर

ज्ञान पाय हुलसी समनि, शुक्ल छठ मधु मास ।

संवत रस अग्निक भु,(१५३६)रच्यो शांतिपरकाश॥

अरिहंत सिद्ध गण ईसजी, उपाध्याय सब साध ।

पंच परम गुरु दीजिये, निर्मल ज्ञान समाध ॥१३१॥



काल अनादि भयो जग भ्रमत,सदा कुमरण हि कीनो।
एक बार हू सम्यक युत मैं, निज आतम नहिं चीनो ॥
जो निज पर को ज्ञान हो तो, मरण समय दुख कांई।
देह विनासी मैं जिन भासी,ज्योति स्वरूप सदाई ॥५
विषय कषायन के वश होकर, देह आपनो जानो ।
कर मिथ्या सरधान हिये बिच,आतम नहीं पिछानो॥
यों कलेश हिय धार मरण कर,चारों गति भरमायो।
सम्यक दर्शन ज्ञान तीन ये, हिरदे में नहीं लायो ॥६
अब या अरज करूं प्रभु सुनिये,मरण समय यह मांगो।
रोग जनित पीड़ा मत होऊ, अरु कषाय मत जागो॥
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजे ।
जो समाधि युत मरण होय मुझ,मिथ्या मम छीजे॥७
यह तन सात कुधात मई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै ॥
अति दुर्गंध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढ़ावे ।
देह विनासी यह अविनाशी,नित्य स्वरूप कहावे ॥८
यह तन जीर्ण कुटी सम आतम, यातें प्रीति न कीजे।
नूतन महल मिले जब भाई, तब या में क्या छीजे ॥
मृत्यु होन से हानि कौन है,या को भय मत लावो ।
समता से जो देह तजोगे,तो शुभ तन तुम पावो ॥९

॥ समाधि-मरण ॥

(नरेंद्र छंद)

वन्दो श्री अरहन्त परम गुरु, जो सब को सुखदाई ।
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥
अब मैं अरज करूं प्रभु तुम से, कर समाधि उर माँहि ।
अन्त समय में यह वर मांगू, सो दीजै जगराई ॥ १ ॥
भव भव में तन धार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो ।
भव भव में नृप ऋद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो ॥
भव भव में तन पुरुष तनो धर, नारी हू तन लीनो ।
भव भव में मैं भयो नपुंसक, आतम गुण नहिं चीनो ॥२
भव भव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे ।
भव भव में गति नरक तनी धर, दुख पाये विध योगे ॥
भव भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी ।
भव भव में स्वधर्मी जन को, संग मिलो हितकारी ॥३॥
भव भव में जिन स्मरण कीनो, दान सुपात्रहि दीनो ।
भव भव में समवसरण में, देख्यो गुणी जन भीनो ॥
एती वस्तु मिली भव भव में, सम्यक गुण नहिं पायो ।
ना समाधि युत मरण कियो मैं, ता तैं जग भरमायो ॥४॥

काल अनादि भयो जग भ्रमत,सदा कुमरण हि कीनो।
एक वार हू सम्यक युत मैं, निज आतम नहिं चीनो ॥
जो निज पर को ज्ञान हो तो, मरण समय दुख काई।
देह विनासी मैं जिन भासी,ज्योति स्वरूप सदाई ॥५
विषय कषायन के वश होकर, देह आपनो जानो।
कर मिथ्या सरधान हिये बिच,आतम नहीं पिछानो॥
यों कलेश हिय धार मरण कर,चारों गति भरमायो।
सम्यक दर्शन ज्ञान तीन ये, हिरदे में नहीं लायो ॥६
अब या अरज करूं प्रभु सुनिये,मरण समय यह मांगो।
रोग जनित पीड़ा मत होऊ, अरु कषाय मत जागो॥
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजे।
जो समाधि युत मरण होय मुझ,मिथ्या मम छीजे॥७
यह तन सात कुधात मई है, देखत ही घिन आवे।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावे ॥
अति दुर्गंध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढावे।
देह विनासी यह अविनाशी,नित्य स्वरूप कहावे ॥८
यह तन जीर्ण कुटी सम आतम, याते प्रीति न कीजे।
नूतन महल मिले जब भाई, तब या में क्या छीजे ॥
मृत्यु होन से हानि कौन है,या को भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ॥९

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के मांहीं।
जारन तन से देन नयो यह, या सम साहू नाहीं॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजे।
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजे॥१०
जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिन को फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, सर्व संपदा भाई॥
राग द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समय में समता धारो, पर भव पंथ सहाई॥११
कर्म महा दुष्ट बैरी मेरो, ता सेती दुख पावे।
तन पिंजरे में बंध कियो मोहि, तासों कौन छुड़ावे॥
भूख तृपा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े।
मृत्युराज अब आय दया कर, तन पिंजरे से काढ़े॥१२
नाना वस्त्राभूषण मैं ने, इस तन को पहराये।
गंध सुगंधित अतर लगाये, षट रस असन कराये॥
रात दिना मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रहो निधि मेरी॥१३
मृत्यु राय को शरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊं।
जा में सम्यक रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊं॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जग मांहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई॥१४

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गति दाता।
इन से ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेति।
समता धर कर मृत्यु करो तो, पावो संपत्ति तेती॥१५
चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो।
हार प्रति हारे चक्री तीर्थंकर, स्वर्ग मुकति में जावो॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारे।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे॥१६
इस तन में क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरन हो है।
तेज कांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है॥
पांचों इन्द्री शिथिल भइ अब, स्वास शुद्ध नहिं आवे।
ता पर भी ममता नहिं छोडे, समता उर नहिं लावे॥१७
मृत्युराज उपकारी जिय को, तन से तोहि छुड़ावे।
नातर या तन बंदिग्रह में, परयो परयो बिललावे॥
पुद्गल के परमाणू मिल के, पिंड रूप तन भासी।
यही मूरती मैं अमूरती, ज्ञान ज्योति गुण खासी॥१८
रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे॥
या तन से इस क्षेत्र सम्बन्धि, कारण आन बनो है।
खान पान दे या को पोषो, अब सम भाव ठनो है॥१९

मिथ्या दर्शन आतम ज्ञानविन; यह तन अपनो जानो।
इन्द्री भोग गिने सुख मैं ने, आपो नाहिं पिछानो॥
तन विनशन तें नाश जानि निज,यह अयान दुखदाई।
कुटुम्ब आदि को अपनो जानो,भूल अनादि छाई॥२०
अब निज भेद यथारथ समझो,मैं हूं ज्योति स्वरूपी॥
उपजै विनसै सो यह पुदगल, जानो या को रूपी॥
इष्ट निष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुदगल त्यागे।
मैं जब अपनो रूप विचारों,तब वे सब दुख भागे॥२१
विन समता तन नन्त धरे मैं,तिन में ये दुख पायो।
शस्त्र घात तें नन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो॥
बार नन्त ही अग्नि मांहिं,जर मूयो समतो न लायो।
सिंह व्याघ्र अहि नन्तबार मुझ,नाना दुख दिखायो२२
विन समाधि ये दुख लहे मैं. अब उर समता छाई।
मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई॥
या तें जब लग मृत्यु न आवे,तब लग जप तप कीजे।
जप तप विन इस जग के मांहीं,कोई भी ना सीजे॥२३॥
स्वर्ग संपदा तप से पावै. तप से कर्म नसावे।
तप ही से शिव कामिनि पति है, या सों तप चित लावे॥
अब मैं जानी समता विन मुझ,कोऊ नाहिं है सहाई।
मात पिता सुत बांधव तिरिया,ये सब हैं दुखदाई२४

मृत्यु समय में मोह करैं ये, ता ने आरत हो है।
आरत तैं गति नीची पावै, यों लख मोह तजो है॥
और परिग्रह जेते जग में, तिन सों प्रीति तजो जे।
पर भव में ये संग न चालै, नाहक आरत कीजे॥२५॥
जे जे वस्तु लसत हैं ते पर, तिनसे नेह निवारो।
पर गति में ये साथ न चालै, ऐसो भाव विचारो॥
जो परभव में संग चलैं तुझ, तिन से प्रीति सु कीजे।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे॥२६
[illegible] लक्षण मय धर्म धरो उर, अनुकम्पा चित लावो।
[illegible] कारण नित्य चिन्तवो, द्वादश भावन भावो॥
चारों परवी पोषध कीजे, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सो अनुरागो २७
अन्त समय में ये शुभ भावहि, होवैं आन सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावैं, रिद्धि देहि अधिकाई॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता ला के।
जा सेती गति चार दूर कर, वसो मोक्षपुर जा के॥२८
मन थिरता कर के तुम चिंतो, चौं आराधन भाई।
ये ही तो कों सुख की दाता, और हितू कोउ नाई॥
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
[illegible]हु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी२९

तिन में कछु इक नाम कहूं मैं, सो सुन जिय चित लाके।
भाव सहित अनमोदे ता से, दुर्गति होय न जा के॥
अरु समता निज उर में आवे, भाव अधीरज जावे।
यों निशि दिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विच ला-
वे३०॥धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बचा जुत, पांव भख्यो दुखकारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, अपराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी३१
धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तौ भी श्री मुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।३२
देखो गजमुनि के सिर ऊपर, विप्र अगिन बहु बारी
शीश जले जिमि लकडी तिन को, तो भी नाहि चिगारी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३३
सनतकुमार मुनि के तन में, कुष्ट-वेदना व्यापी।
छिन्न भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्तो गुण आपी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ३४

श्रेणिक सुन गंगा में डूबो नव, जिन नाम चितारो ।
धर सलेखना परिग्रह छांडो, शुद्ध भाव उर धारो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव वारी ॥३५
समँतभद्र मुनिवर के मन में, क्षुधा वेदना आई ।
ता दुख में मुनि नेक न डिगियो, चिंतो निज गुण भाई ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुख है! मृत्यु महोत्सव वारी ३६
ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबी नट जानो ।
नदी में मुनि यह कर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित्त धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुख है मृत्यु महोत्सव वारी ३७
धर्म घोष मुनि चंपा नगरी, बाह्य ध्यान धर गाढ़ो ।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह ठाढ़ो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख? मृत्यु महोत्सव वारी ३८
श्रीदत्त मुनि को पूर्व जन्म को, वैरी देव सुआके ।
विक्रिय कर दुख शीत तनो, सो सहो साध मन लाके ।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चितधारी ॥
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्यु महोत्सव वारी ॥३९

वृषभ सेन मुनि उष्ण शिला पर, ध्यान धरो मन लाई ।
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की,वेदन सहि अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुम जिय कौन दुख है मृत्यु महोत्सव बारी॥४०
अभय घोष मुनि काकंदी पुर, महा वेदना पाई ।
वैरी चँड ने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता,आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुख है,मृत्यु महोत्सव बारी ॥४१
विद्युत्चर ने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी ।
शुभ भावन से प्राण तजे निज,धन्य और बड़ भागी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुख है,मृत्यु महोत्सव बारी ॥४२
पुत्र चिलाती नामा मुनि को, वैरी ने तन घातो ।
मोटे मोटे कीट पड़े तन, ता पर निज गुण रातो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुख है?मृत्यु महोत्सव बारी॥४३
दण्डक नामा मुनि की देही, बाणन कारि अरि भेदी॥
ता पर नेक डिगे नहिं वे मुनि,कर्म महा रिपु छेदी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥४४

+अभिनंदन मुनि आदि पांच सै,घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्री मुनि समता धारी, पूरव कर्म विचारे ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥४५
चाणक मुनि गोधर के मांही,मृदि अगिनि पर जालो।
श्री गुरु उर सम भाव धारके, अपनो रूप सँभालो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है?मृत्यु महोत्सव वारी॥४६
सात शतक मुनिवर ने पायो, हथनापुर में जानो।
बली ब्राह्मण कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहीं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी॥
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥४७
लोहमयी आभूषण घड के, ताते कर पहराये।
पांचो पाण्डव मुनि के तन में, तो भी नहिं चिगाये॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी॥
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥४८

+ यह ग्रन्थ दिगम्बर आम्ना वाले ने बनाया होनेसे इसमें दिगम्बर ग्रन्थ कथित साधु ओं के नाम दिए हैं.श्वेताम्बर समाजमें स्कन्धाचार्य को ५०० शिष्य सहित घानीमें पीलनेका कथन है.

और अनेक भये इस जग में समता रस के स्वादी।
वे ही हम को हो सुख दाता, हर हैं टेव प्रमादी ॥
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों।
ये ही मो को सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों॥४९
यों समाधि उरमाहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, ज्योति स्वरूपी ध्यावो।
जो कोई निज करत पयानो, ग्रामांतर के काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ शुभ कारज साजै॥५०
मात पितादिक सर्व कुटुम्ब सो, नीके शकुन बनावें।
हलदी धनियां पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावें॥
एक ग्राम के कारण एते, करें शुभा शुभ सारे।
जब परिगति को करत पयानो, तब नहिं सोचे प्यारे ५१
सर्व कुटुम्ब जब रोवन लागें, तोहिं रुलावें सारे।
ये अपशकुन करें सुन तो कों, तू यों क्यों न विचारे॥
अब परगति को चालत बिरियां, धर्म ध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोह तनो दुख हानो॥५२
ह्वै निशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो॥
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥ ५३

दोहा ।

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुद्धिवान ।
सरधा धर नित्य सुख लहो, सूरचन्द शिव थान॥५४
पंच उभय नव एक नभ, सम्वत सो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ॥ ५५

इति समाधि मरण ॥



दूसरा-समाधि मरण ।

जोगी रासा या नरेंद्र छन्द ।

गौतम स्वामी वन्दो नामी, मरण समाधि भला है ।
मैं कब पाऊं निश दिन ध्याऊं, गाऊं वचन कला है॥
देव धरम गुरु प्रीति महा दृढ़, सप्त व्यसन नहिं जाने ।
त्यागी बाईस अभक्ष संयमी, बारह व्रत नित्य ठाणे॥ १ ॥
चक्की उखरी चूलि बुहारी, पानी त्रस न विरोधे ।
बनिज करे पर द्रव्य हरे नहिं, छहों करम इमि सोधे॥
स्मरण शास्त्र गुरुन की सेवा, संयम तप चउ दानी ।
पर उपकारी अल्प अहारी, समायक विधि ज्ञानी ॥२
जाप जपे तिहुं योग धरै दृढ़, तन की ममता टारे ।
अन्त समय वैराग्य सम्हारे, ध्यान समाधि विचारे॥

आग लगे अरु नाव जु डूबे, धर्म विघन जब आवे।
चार प्रकार अहार त्यागि के, मंत्र सुमन में ध्यावे ॥३
रोग असाध्य जरा बहु देखे, कारण और निहारे।
बात बड़ी है जो बनि आवे, भार भवन को डारे ॥
जो न बने तो घर में रह करि, सब सों होय निराला।
मात पिता सुत तिय को सौंपे, निज परिग्रह अहि काला॥ कछु जानालय कछु श्रावक जन, कछु दुखिया धन देई।क्षमा क्षमा सब ही सों कहि के, मनकी शल्य हनेई॥
शत्रुन सों मिलि निज कर जोरे, मैं बहु करी है बुराई।
तुम से प्रीतम को दुख दीने, ते सब क्षम हो भाई॥५
धन धरती जो मुख सो मांगे, सो सब दे सन्तोषे।
छहों काय के प्राणी ऊपर, करुणा भाव विशेषे॥
ऊंच नीच घर बैठ जगह इक, कुछ भोजन कुछ पैले।
दूधाधारी क्रम क्रम तजि कै, छाछ अहार करे पहेले ॥६
छाछ त्याग के पानी राखे, पानी तजि संथारा।
भूमि मांहि थिर आसन मांडे, साधर्मी ढिग प्यारा॥
जब तुम जानो यह न जंप है, तब जिन वाणी पढ़िये।
यों कहि मौन लियो सन्यासी, पंच परम पद गहिये॥७
चार आराधन मन में ध्यावे, बारह भावन भावे।
दश लक्षण मन धर्म विचारे, रत्नत्रय मन ल्यावे॥

पैंतिस सोलह पट पन चारों,दुइ इक वरन विचारे।*
काया तेरी दुःख की ढेरी, ज्ञान मयी तू सारे ॥ ८ ॥
अजर अमर निज गुण सो पूरे, परमानन्द सुभावे ।
आनन्द कन्द चितानन्द साहब,तीन जगत पति ध्यावे॥
क्षुधा तृषादिक होइ परिषह, सहे भाव सम राखे ।
अतिचार पांच सब त्यागे,ज्ञान सुधारस चाखे ॥ ९ ॥
हाड मांस सब सूखि जाँय जब, धरम लीन तन त्यागे ।
अद्भुत पुण्य उपाय स्वर्ग में, सेज उठे ज्यों जागे ॥
तहां ते आवे शिव पद पावे, विलसे सुक्ख अनन्तो ।
'द्यानत' यह गति होय हमारी,जैन धरम जयवन्तो॥१०

सागरी संथारा का पाठ

दोहा—आहार शरीर उपाधी । पचखुं पाप अठार ॥
मरजावूं तो वोसीरे । जीवूं तो आगार ॥ १ ॥

सूचनाः-शयन करती वक्त या आग्नि सिंह सर्पादि किसीभी प्रकारका भय उत्पन्न होवे तब यह पाठ कहना. जाग्रत होकर तथा उपसर्ग निवृते तब ५ नवकार मंत्र का स्मरण करने से खुला होवे.

* णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ॥ यह ॥ ३५ ॥ अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ॥ यह ॥ १६ ॥ अरिहंत, सिद्ध ॥ यह ६ ॥ अ. सि. आ. उ. सा. ॥ यह ५ ॥ सिद्ध, साधु ॥ यह ४ ॥ सिद्ध ॥ यह २ ॥ ॐ ॥ यह १ ॥ इसमें से हर किसिका ध्यान करे ॥

रत्नाकर-पच्चीसी.

शुभ केलि के आनन्द के। घन के मनोहर धाम हो॥
नर नाथ से सुर नाथ से। पूजित चरण गत काम हो॥
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो। सब से सदा संसार में॥
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो। आदर्श हो आचार में॥ १॥
संसार दुःख के वैद्य हो। त्रैलोक्य के आधार हो॥
जय श्रीश! रत्नाकर प्रभो। अनुपम कृपा अवतार हो॥
गत राग! है विज्ञप्ति मेरी। मुग्ध की सुन लीजिये॥
क्यों कि प्रभु तुम विज्ञ हो। मुझको अभय वर दीजिये॥२
माता पिता के सामने। बोली सुना कर तोतली॥
करता नहीं क्या अज्ञ बालक बाल्य वश लीला वली॥
अपने हृदय के हाल को। त्यों ही यथोचित रीत से॥
मैं कह रहा हूं, आपके। आगे विनय से प्रीति से॥३॥
मैंने नहीं जग में कभी। कुछ दान दीनों को दिया॥
मैं सच्चरित भी हूं नहीं। मैंने नहीं तप भी किया॥
शुभ भावनाएं भी हुईं। अब तक न इस संसार में॥
मैं घूमता हूं व्यर्थ ही। भ्रम से भवोदधि धार में॥४
क्रोधाग्नि से मैं रातदिन हा। जल रहा हूं हे प्रभो।
मैं लोभ नामक साँप से। काटा गया हूं हे प्रभो।

अभिमान के खल ग्राह से। अज्ञान वश में ग्रहस्त हूं ॥
किस भाँति हो स्मृत आपामाया जाल से मैं व्यस्त हूं ५
लोकेश ! पर-हित भी किया।मैंने न दोनों लोक में ॥
सुख लेश भी फिर क्यों मुझे हो। चीखता हुं शोक में॥
जग में हमारे से नरोंका । जन्म ही सब व्यर्थ है ॥
मानो जिनेश्वर ! वह भवों की। पूर्णता के अर्थ है॥६॥
प्रभु! आपने निज सुख सुधाका। दान यद्यपि दे दिया॥
यह ठीक है, परचित्तने। उसका न कुछभी फल लिया॥
आनन्द रस में डूब कर। सद्वृत्त वह होता नहीं ।
है वज्र सा मेरा हृदय । कारण बड़ा बस है यही॥७॥
रत्न त्रयी दुष्प्रप्य है । प्रभु से उसे मैंने लिया ॥
बहुकाल तक बहुबार जब। जगका भ्रमण मैंने किया॥
हा ! खोगया वह भी विवश। मैं नींद आलस में रहा॥
अब बोलिये उसके लिए। रोऊं प्रभु किस के यहां॥८॥
संसार ठगने के लिए । वैराग्य को धारण किया ॥
जग को रिझाने के लिए । उपदेश धर्मोका दिया ॥
झगडा मचाने के लिए । मम जीभपर विद्या बसी ॥
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊं। हे प्रभो ! अपनी हंसी॥९॥
परदोष को कहकर सदा । मेरा वदन दूषित हुआ ॥
लख कर पराइ नारियों को । हा! नयन दूषित हुआ॥

मन भी मलीन है सोचकर। परकी बुराई है प्रभो ॥
किस भाँति होगी लोकमें। मेरी भलाई है प्रभो ॥१०॥
मैंने चढाई निज विवशता। हो अवस्था के वशी ॥
भक्षक रतीश्वर से हुई। उत्पन्न जो दुःख राक्षसी ॥
हा! आपके सम्मुख उसे। अति लाजसे प्रगट किया।
सर्वज्ञ हो सब जान तोस्वय मेव संसृति की क्रिया॥११
अन्यान्य मंत्रों से परम। परमेष्ठी मंत्र हटा दिया ॥
सच्छास्त्र वाक्यों को। कुशास्त्रों से मैंने दबा दिया ॥
विधि उदय को करने वृथा। मैंने कु देवाश्रम लिय॥
हे नाथ यों भ्रम वश अहित मैंने नहीं क्या क्या किया!१२
हा तज दिया मैंने प्रभो। प्रत्यक्ष पाकर आप को ॥
अज्ञान वश मैं ने किया। फिर देखीये किस पाप को॥
वामाक्षियोंके कुच कटाक्षों। पर सदा मरता रहा ॥
उन के विलासों को हृदय में। ध्यान को करता रहा॥१३
लख कर चपल दृग युवतियों के। मुख मनोहर रस मई॥
जो मन पटल पर राग। भावों की मलिनता धस गई॥
वह शास्त्र निधी के शुद्ध जल से। तो न क्यों धोई गई॥
बतलाइ ए यह आपही। मम बुद्धि तो खोई गई ॥१४
मुझमें न अपने अंग के। सौंदर्य का आभास है ॥
मुझमें न गुणगण है विमल। न कला कलाप विलास है॥

अधुना न मुझमें स्वप्न को भी । चमकती है देखिए ॥
तो भी मराहूं गर्व से मैं । मूढ हो किस के लिए ॥ १५॥
हा ! नित्य घटती आयु है । पर पाप मति घटति नहीं ।
आई बुढ़ौती पर विषय से । कामना हटती नहीं ॥
मैं यत्न करता हूं दवामें । धर्म में करता नहीं ॥
दुमोंह महिमा से ग्रसित हूं । नाथ ! बच सकता नहीं॥१६
अथ पुण्य को भव आतम को । मैंने कभी माना नहीं॥
हा ! आप आगे हैं खड़े ! दिन नाथ से यद्यपि यहीं ॥
लोभी खलों के वाक्य को । मैंने सुना कानों वृथा ॥
धिक्कार मुझ को है । गया मम जन्म ही मानों वृथा॥१७
सत्पात्र दान देव स्मरण । कुछ नहीं मैंने किया ॥
मुनि धर्म श्रावक धर्म का भी, नहीं सविधि पालन किया॥
नर जन्म पाकर ही वृथा ही । मैं उसे खोता रहा ॥
मानों अकेला घोर वन में । व्यर्थ ही रोता रहा ॥१८॥
प्रत्यक्ष सुखकर जिन मत में । प्रीति मेरी थी नहीं ॥
जिन नाथ ! मेरी देखिये । है मूढ़ता भारी यही ॥
हा ! काम मधुक कल्पद्रुमादिक । के यहां रहते हुए॥
हमने गंवाया जन्मको । धिक्कार दुःख सहते हुए॥१९.
मैंने न रोका रोग दुःख । संभोग सुख देखा किया ॥
मन में न मृत्यु भय । धन-लाभही लेखा किया ॥

हा ! मैं अधम युवति जनोंके । ध्यान नित करता रहा॥
पर नरक कारागार से । मनमें न म डरता रहा॥२०॥
सद्वृत्ति से मन में न मैंने । साधुता हा साधिता ।
उपकार करके कीर्ति भी । मैंने नहीं कुछ अर्जिता ।
च्यार तीर्थ के उद्धार आदिक । कार्य कर पाये नहीं ।
नर जन्म पारस तुल्य निज । मैंने गँवाया व्यर्थही ॥२
शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी । करना मुझे आता नहीं ।
खल वाक्या भी गत क्रोध हो। सहना मुझे आता नहीं ।
आध्यात्म विद्या है न मुझ में । है न कोई सत्कला ।
फिर देव! कैसे भवोदधि । पार होवे गा भला ?॥२
सत्कर्म पहले जन्म में । मैंने किया कोई नहीं ॥
आशा नहीं जन्मान्य में । उसको करूंगा मैं कहीं ।
इस भाँतिका यदि हू जिनेश्वर । क्यों न मुझको कष्ट हो
संसार में फिर जन्म तीनों । क्यों न मेरे नष्ट हो॥२
है पूज्य! अपने चरित्र को । बहु भाँति गाऊं क्या वृथा
कुछ भी नहीं तुमसे छिपी । है पाप मय मेरी कथा
क्यों कि त्रिजग के रूप हो तुम । ईश हो सर्वज्ञ हो
पथके दर्शक हो तुम्ही । मम चित्त के मर्मज्ञ हो ।२
दीनोद्धारक धीर । आपसम अन्य नहीं है ।
कृपा पात्र भी नाथ! न मुझसा अपर कहीं है॥

नों भी माँगू नहीं धान्य । धान कभी भूल कर ॥
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न । होवे मंगल कर ॥
श्री रत्नाकर गुण गान यह । दुरित दुःख सब के हरे॥
बस एक यही प्रार्थना । मंगल मय जग को करे ॥ २५ ॥

" मेरी भावना "

भावना का रहस्यः—किसी विषय को पुष्ट बनाने, उसमें चित्तकी स्थिरता, भावोंकी दृढ़ता, सम्पादन करने अथवा तद्रूप होने, या उसकी समाप्ति के आदि के लिए, जो उसका तथा उस के साधनों का पुनः पुनः संचिन्तन और समिहन किया जाता है, उसे भावना कहते हैं. " यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी " अर्थात जो मनुष्य सच्चे हृदय से शुद्ध अन्तःकरण से जैसी भावना करता है उसको वैसी ही सिद्धि की प्राप्ति होती है.

गुरुमंत्रः—"आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत, " जो जो बातें क्रिया एं चेष्टा एं तुमारे प्रतिकूल हैं, जिनके दूसरों द्वारा किए हुए व्यवहारोंको तुम अपने लिए पसंद नहीं करते, अहित कर और दुःख दाई समझते हो, उनका आचरण तुम दूसरों प्रति मन

करो " यही पापों से बचानेका गुरुमंत्र है, इसके अनुष्ठान की निरंतर भावना रखनी चाहिये. (छन्द)

जिसने राग द्वेष कामादिकजीते,सब जग जान लिया।
सब जीवों को मार्ग मोक्ष का।निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध वीर जिन हरिहर ब्रह्मा।या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो। यहचित्त उसी में लीन रहो।१
विषयों की आशा नहीं जिन को।साम्य-भाव धन रखते हैं।।निजपरके हित साधनमें जो।निशदिन तत्पर रहतेहैं
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या। बिना खेद जो करते हैं।।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के। दुःख समूह को हरते हैं।।२
रहे सदा सत्संग उन्हीका। ध्यान उनहीका नित्य रहे।।
उन ही जैसी चर्या में यह। चित्त सदा अनुरक्त रहे ।।
नहीं सताऊँ किसी जीव को।झूठ कभी नहीं कहा करूं।।३
अहंकार का भाव न रक्खूं। नहीं किसीपर क्रोध करूं।।
देख दूसरों की बढती को। कभी न ईर्षा भाव धरूं ।।
रहे भावना ऐसी मेरी । सरल सत्य व्यवहार करूं ।।
बने जहाँतक इस जीवन में। औरों का उपकार करूं।।४
मैत्री भाव जगत में मेरा। सबजीवों से नित्य रहे ।।
दीन दुःखी जीवों पर मेरे। उरसे करुणा स्रोत बहे ।।

दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतोंपर । क्षोभ नहीं मुझको आवे॥
साम्य भाव रक्खूं मैं उनपर।ऐसी परिणति हो जावे॥५
गुणी जनों को देख हृदयमें । मेरे प्रेम उमड़ आवे ॥
बने जहांतक उनकी सेवा । कर के ये मन सुख पावे॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं । द्रोह न मेरे उर आवे ॥
गुणग्रहण का भाव रहे नित।दृष्टी न दोषों पर जावे॥६
कोई बुरा कहो या अच्छा । लक्ष्मी आवे या जावे ॥
लाखों वर्षों तक जीऊं या । मृत्यु आज ही आजावे ॥
अथवा कोई कैसा ही भय । या लालच देने आवे ॥
तो भी न्याय मार्ग से मेरा।कभी न पद डिगने पावे॥७
होकर सुखमें मग्न न फूले।दुःख में न कभी घबरावे ॥
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक।अटवी से नहीं भय खावे
रहे अडोल अकंप निरन्तर। यह मन दृढ़तर बन जावे॥
इष्ट वियोग-अनिष्ट योगमें।सहन शीलता दिखलावे॥८
सुखी रहे सब जीव जगत के । कोई कभी न घबरावे ॥
बैर पाप अभिमान छोड़ जग।नित्य नये मंगल गावे॥
घर घर चर्चा रहे धर्म की । दुष्कृत दुष्कर हो जावे ॥
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना।मनुज जन्म सब फल पावे९
ईति भीति व्यापे नहीं जगमें।वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी । न्याय प्रजाका किया करे ॥

रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले। प्रजा शांति से जिया करे॥
परम अहिंसा-धर्म जगत में फैल सर्वहित किया करे १०
फैले प्रेम परस्पर जग में। मोह दूर पर रहा करे॥
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहीं। कोई मुख से कहा करे॥
बन कर सब 'युग-वीर' हृदय से। देशोन्नति रत रहा करे॥
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से। सब दुःख-संकट सहा करे॥

तथास्तु

॥ दोहा ॥

सौ बात की एक बात। सकल शास्त्र को सार॥
दया दान दम आतमा। तिलोक कहे उरधार॥

शमता

सीधी साहीं मोक्ष दे। उलटी दुर्गत देन॥
अक्षर तीन है ओलखो। दोय लघु गुरु एक॥



श्री उपदेश शतक

मङ्गला चरणम्

(अनुष्टुप)

मोक्ष मार्गस्य नेतारं । भेतारं कर्म भू भृत्ताम् ॥
ज्ञानारं विश्वतत्त्वनां । वन्दे तद्गुण लब्धये ॥ १ ॥

अर्थ—जिनों ने कर्म रूप पर्वतों को भेद कर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया, जिसके द्वारा सर्व लोक में रहे पदार्थोंको युगपत जाने देखे. जिस कर उद्धर्म स्थापन कर मोक्ष के नेता [ले जाने वाले]बने प्रथम उन जिनेश्वर को नमस्कार करताहुं॥१॥

" जेहर का कीडा जेहर में खुशी "

[श्लोक– शार्दूल विक्रीडित वृत्तम]

विप्राऽस्मिन्नगरे महान् वसति क? स्ताल द्रुमाणांगणः।
को दाता? रज को, ददाति वसनं प्रातर्गृहित्वा निशि ॥
को दक्षः? परदार वित्त हरणे सर्वेपि दक्षा जनाः।
कस्माज्जीवासे हे सखे? विषकृमि न्यायेन जीवाम्यहम्॥

भावार्थः—एक पन्डित परदेश में आते हुए किसी बडे शेहर को देख सम्मुख आते ब्राह्मण से प्रश्न किया कि—अहो भाई! इस शेहर में बडा कौण है? ब्राह्मण ने कहा—ताडवृक्ष बडे है.

फिर पण्डित ने पूछा कि--कोट बड़ा न हो तो कुछ हरकत नहीं, किन्तु कोइ दातार तो है? । ब्राह्मण ने कहा--हां, धोबी. क्यों कि प्रातः काल में लोगों लम्बे हाथ कर उस से याचना करते हैं, उन्हें वह वस्त्र दान देता है; अर्थात् धोबी के सिवाय और कोइ दातार नहीं है. । फिर पण्डित ने पूछा-ठीक, कोई दातार नहीं है तो कुछ हरकत नहीं, किन्तु कोइ होंशार [चतुर] मनुष्यभी है ? ब्राह्मण ने कहा-हां, परधन हरने में और परस्त्री गमन करने में सबही बडे होंश्यार हैं. तब फिर पण्डित ने कहा-अरे भाइ ! ऐसे शहर में तू किस प्रकार जीता रहता है ? ब्राह्मणने कहा कि जैसे जेहरका कीडा जेहर में मजा मानता है, तैसे मैं भी येही मजा मानता हूं.

" विनाश काल में बुद्धि भी विपरित हो जाति है "

(श्लोक--उपजाति वृत्तम्)

नभूत पूर्वो नच केन दृष्टो हेमः कुरंगो न कदापि वार्ता ॥
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरित बुद्धिः

अर्थः--सुवर्ण मृग (हिरन) पहिले कभी ऊआ नहीं तैसेही कभी किसी ने देखा भी नहीं. और न कभी किसी के मुह से सुना कि सुवर्ण मृग होता है. तथापि रामचन्द्रजी को मायामय सुवर्णमृग को पकड नेकी तृष्णा हुइ.तभी तो रावण सीताजी का हरण कर गया. अर्थात विनाश के काल में बुद्धि भी विपरित हो जाती है.

" पुण्योदय में जो करे सो अच्छा होवे "

(श्लोक—अनुष्टुप वृत्तम्)

औषधं शकुनं मंत्रो । नक्षत्रं ग्रह देवताः ॥
भाग्य काले प्रसीदंति।अ भाग्येयांति विक्रियाम् ॥३॥

अर्थः—औषधी, शकुन, मंत्र, नक्षत्र, ग्रह और देवता, इत्यादि सभी पुण्य के उदय में सुख दाता हो जाते हैं और पाप का उदय होता है तब दुःख दाता हो जाते है.

" ग्रह सेभी कर्म बलवान हैं "

कर्मणो हि प्रधानत्वं । किं कुर्वन्ति शुभग्रहाः ॥
वशिष्ट दत्त लग्ने पि। रामः प्रव्रजितो वने॥ ४ ॥

अर्थः—जो ग्रह बलवान् हो तो, ज्योतिष शास्त्र के विशारद वशिष्ट ऋषिने रामचन्द्रजी को राज्यारोहण का मुहूर्त निकाल दिया था, उसही मुहूर्त में रामचन्द्रजी को वनवास के लिये गमन करना पड़ा ! इस लिये कर्म काही प्रधान पना है, नकि ग्रहका !

' बुढ्ढे से बच्चेका प्रश्न '

बुढ्ढे बाबा ! तुम सदैव नीचे झुक कर क्या ढूंढते चलते हो?
बुढ्ढे बाबाने जबाब दिया की—

जरा दंड प्रहारेण । भग्न कटि रहं कृतः ॥
गतं मे यौवनं रत्नं । पश्यामि तत्पदेपदे॥ ५ ॥

अर्थः—हे बच्चे ! जरा (वृद्धावस्था) रूप राक्षसी के दंड प्रहार से मेरी कम्मर बाँकी होगई और यौवन [युवनी] रूप रत्न गुम गया, उसही को पग पग पर ढूँढता हुआ सदैव फिरता हुं, किन्तु मिलना ही नहीं है !

' कोनसा मनुष्य पशु के जैसा? ' उत्तर

(श्लोक-उपजाति वृत्तम्)

येषां न विद्या न तपो न दानं। न चापि शीलं न गुणो न धर्मः ॥ ते मृत्युलोके भुवि भार भूता । मनुष्य रूपेण मृगाश्चरंति ॥ ६ ॥

अर्थः—जिनने सद्विद्याभ्यास नहीं किया, तप धर्म भी नहीं किया, सत्पात्रमें दान भी नहीं दिया, स्वधर्म शील भी नहीं पाला किसीके गुणग्रहण भी नहीं किये, धर्माराधन भी नहीं किया, ऐसा मनुष्य मनुष्यलोकमें पृथ्वी पर भार भूत, मनुष्य देह धारी जंगल के मृग के समान नीरा पशु जाणना.

" दानार्थ-राजा प्रधान के प्रश्नोत्तर "

(श्लोक अनुष्टुप)

आपदर्थं धनं रक्षेत् । भाग्यवंतः कचापदः ॥
कदापि कुपितं दैवं । संचितोपि विनश्यति ॥ ७ ॥

अर्थः—दान शूर राजा को दान मार्ग में अपरिमित द्रव्य व्यय करता देख भंडार खाली होजाने का डर था, प्रधान ने राजा

को दानसे रोकने के लिये राजाजी की दृष्टि पडे वहां लिखा कि "आपदर्थे धनं रक्षेत्" अर्थात् आपदा का निवारण करने के लिये धन की रक्षा करना आवश्यकीय है. । राजा पढकर मतलब हेतु समझा और उसके नीचे लिखा कि-"भाग्यवंत कचापदः" अर्थात् भाग्यवान् को आफत आतीही नहीं है. उसके नीचे प्रधान ने लिखा. कि-"कदापि कुपितो दैव" अर्थात्-कदाचित् दैव-कर्म कोपित हो जावे तो । किसे मालुम, उसके नीचे राजा ने लिखा कि-"साश्चितोपि विनश्यति" अर्थात्-जो दैव कुपित हुए तो संचित कर रखा धन भी नाश पा जावेगा. इसलिये दान में लगा कर उसका सार्थक करनाही अच्छा है.

"पत्ते की पनातल पे जेमन का पाप"

गृध्रो द्वादश जन्मानि । दश जन्मानि शूकरः॥
कुर्कुटः शत जन्मानि । पत्राली भाजने भवेत् ॥ ८ ॥

अर्थः—पत्ते की पनातल (पत्रावली) में भोजन करने वाला १२ भव गीध के, १० भव सूवरके, और १००भव कुर्कट (मुर्गे) के करने पडते हैं ! !

"कंद मूल खाने का पाप, और छोडने का धर्म".

रक्त मूलं भवेत् कन्दं । तुल्यं गोमांस भक्षणम् ॥
भक्षणान्नरकं याति । वर्जनात् स्वर्गमाप्नुयात् ॥९॥

अर्थ—लाल कांदे, मूले, रतालु, गाजर, शकरकन्द,

आदि खानेसे गाय के मांस भक्षण जैसा पाप लगता है. कंद मूल खानेवाला नरकमें जाता है और त्यागने(छोडाने)वाला स्वर्गमें जाता है.

सिंह और बकरे की कहानी

बकरे बकरी के यूथ से बिछुडकर एक बकरा किसी गहन जंगल में चला गया. वहां मन मुका खाने के लिये हराघास पत्ते; पीनेके लिये झरनाका ठंडा पानी मिलनेसे खा पी कर बकरा लष्ट पुष्ट घिष्ट बनगया. बाल बडे २ होगये, शृंग लम्बे हो वक्र हो गये, नेत्र हलदी के जैसे पीले हो गये इत्यादि. शरीराकृति ऐसी विक्राल हो गइ कि-किसी के पहचान नें में न आवे कि यह बकरा है. एक वक्त वहां सिंह आगया और अनोखा जानवर देख डरगया, किन्तु हिम्मत बान्ध उसके सन्मुख चला. बकरा सिंह को सन्मुख आता देख डरा तो सही, किन्तु उसे एक श्लोक का स्मरण हो गया.

उद्यमं साहसं धैर्यं । बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ॥
षडेते यत्र वर्तंते । तत्र देवः सहाय कृत् ॥ १० ॥

अर्थः—जिनमें-१ उद्यम, २ साहस, ३ धैर्य, ४ बुद्धि, ५ शक्ती और ६ पराक्रम. यह ६ गुण होते हैं, उनका सहायक देवता होता है. ऐसा विचार कर हिम्मत धर खडा रहा. और उस से सिंहने पूछा की—

किमर्थं बुदबुदा कारं । किमर्थं नेत्र पिंगलम् ॥
किमर्थं केश धारित्वं । किमर्थं वन सेवितम ॥ ११ ॥

अर्थः—हे विलक्ष शरीरके धारक प्राणी ! तुम कौन हो ? तुमारे जैसे शरीरवाला प्राणी मैंने कहींभी देखा नहीं. और तुमारा जैसा बडबडात बोलना किसिका सुना नहीं. ऐसेही तुमारी जैसे बिली आँखो वाला और लम्बे बालवाला प्राणी मेरे जानने में भी नहीं आया. अहो इति आश्चर्य, तुम यहां किसको ढूंढते फिरते हो सो कृपाकर फरमाइये! तब बकरा बोलाः—

शतं व्याघ्र मयाहत्वा । हस्तिनां च शतत्रयम् ॥
एकःसिंहो न पश्यामि । तस्मादवनं च सेवितम् ॥१२

अर्थः—अहो बनवासी प्राणी! मैंने सो व्याघ्र को मारे हैं और तीन सो हाथी को मारे हैं. किसी ने मुझ से कहा की-इस बन में एक सिंह रहता है उस को यदि तुम मार डालो तो बहुत अच्छा होवे. इस लिये मैं ढूंढता फिरता हूं. किन्तु अबीतक मेरे देखने में आया नहीं; तुमोरे देखने में आवे तो मुझे बताना. यों सुन कर सिंह घबराया और विचारने लगा कि मेरे अहो भाग्य हैं कि इसने अबीतक मुझे पहचाना नही.यों सोच यह कहने लगाकि-मुझे मिलेगा तो आपको बतावुंगा. यों कह कर वहां से भग गया. और किसी पहाड पर खडा रहकर उसको देखने लगा; तो वह बकरा आक के पत्ते खा रहा है. तब सिंह को विचार हुआ कि बकेरे के सिवाय दुसरा कोई भी पशु आक के पत्ते खाता नहीं है, इसलिये यह बकराहि हुआ चाहिये. यों विचार दौडकर वहां

आया और उस बकरे को मार गिराया! इसलिये ही कहा है कि--

कर्तव्यं भोजनं गुप्तं । दुर्बलेन विशेषतः ॥
अर्क पत्र प्रसादेन । अजा पुत्रो विनश्यति ॥ १३ ॥

अर्थः—भोजन करना तो गुप्त करना, तैसेही दुर्बलोंको तो प्रसिद्ध-कोई देखे ऐसी जगह भोजन कभी नहीं करना, क्योंकि सिंह के देखते बकरेने आक के पान खाये तो यह मारा गया॥

" ज्ञान के दाता गुरु का उपकार मानना "

एकाक्षर प्रदातारं । यो गुरुं नैव मन्यते ॥
श्वान योनि शतं गत्वा । चंडाले ष्वपि जायते ॥१४॥

अर्थ--जो कोइ एकभी अक्षर पढानेवाले गुरुका उपकार नहीं मानेगा. उनकी बुराइ करेगा, उनको दुःख देगा. वह १०० भव कुत्तेका करेगा और फिर अनेक भव चांडाल का भी करना पडेगा।

" ब्राह्मण और शृंगाल की कहानी "

किसी जंगल में एक शियाल को तीन दिन खाने को न मिलने से वह क्षुधातुर बना, नदी के किनारे में मुडदे को बहता देख खेंच लिया और उसे खाने लगा. तब उस मुडदे को पहचान कर एक ब्राम्हण उस शियालसे कहने लगा कि--अरे शियाल ये तेरे खाने लायक नहीं हैं. क्यों कि:—

(श्लोक--शार्दूले विक्रीडित वृत्तम्)

हस्तौ दान विवर्जितौ । श्रुति पुटौ सारस्वतं द्रोहिणौ

नेत्रे साधु विलोक नेन रहिते। पादौ न तीर्थं गतौ ॥
अन्यायार्जित वित्त पूर्ण मुदरं। गर्वेण तुंगं शिरो।
रेरे जम्बूक! मुंच मुंच सहसा। नीचस्य निन्द्यं वपु॥१॥

अर्थ--हे सियाल! इस मुडदेके हाथने कभी दान दिया नहीं, इस लिये हाथ खाने लायक नहीं हैं, कान से कभी शास्त्र श्रवण नहीं किये, कभी सुना भी होगा तो ज्ञानी का द्रोह किया. इस लिये इसके कान भी खानेके लायक नहीं हैं. आँखो से कभी सत्पुरुषों के दर्शन किये नहीं, इसलिये आँखोभी खाने लायक नहीं हैं, पावोंसे कभी तीर्थ यात्रा-साधु साध्वी के दर्शनार्थ गमन किया नहीं, इसलिये पांवभी खाने लायक नहीं हैं. अन्याय--अनीतिसे द्रव्योपार्जन कर उदरपूर्ण किया है, इसलिये पेटभी खाने लायक नहीं हैं. और यह मरा वहांतक इसके मस्तक में से अहंकार दूर हुवा नहीं. इसलिये मस्तकभी खाने लायक नहीं है. यों इसका सब शरीर निन्दा-पात्र है. जो तूं इसका भक्षण करेगा तो इस भव में तेरी बुद्धि भ्रष्ट होगी और आगे के भवों में दुःख पावेगा. यों सुन शृंगाल उस मुरदे को छोड चला गया. सारांस--पापी मनुष्यों का सब शरीर निकम्मा है. उसकी संगत भी कामकी नहीं.

" राजा और ब्राह्मणकी कहानी "

किसी ग्राम के राजा का विश्वास मनुष्यों के उपर से उठ जाने से उसने अपने पर्यंक की रक्षा करने के लिये एक मुशिक्षित विश्वास

" महाजनों की महिमा "

[श्लोक-उपजाति वृत्तम्]

वनेपि सिंहामृगमांस भक्षिणोबुभुक्षिता नैव तृणं चरंति ॥ एवं कुलीना व्यसना भिभूताः न नीच कर्माणि समाचरंति ॥ २९ ॥

अर्थ--वनमें निवास करने वाला सिंह भूखकर अतिही पीडित हुआ तृण [घास] कभी नहीं खायगा, वह तो मृगादि का मांसही भक्षण करेगा, ऐसेही जो महाजन--उत्तम पुरुष हैं वे मरणांतिक संकट पड़ने परभी चोरी जारी मांस भक्षणादि नीच कर्मोंका आचरण कभी भी नहीं करेंगे, वे तो सदैव उत्तम कर्मोंसेही जीवन बीतावेंगे.

" महाजनो ही परोपकारी होते हैं "

पिबंति नद्यःस्वयमेव नाम्बुःस्वयंन खादंति फलानिवृक्षः ॥ नादंति सस्यं खलु वारिवाहाः, । परोपकाराय सतां विभूतयः ॥ ३० ॥

अर्थः---नदी अपने पानीको आप पीती नहीं है, वृक्षों अपने फल को आप स्वयं खाते नहीं हैं, वर्षाद वर्षने में धान्य की उत्पत्ति होती है-उस धान्य को वर्षाद खाता नहीं है,मतलब कि उक्त तीनों ही परोपकारार्थ ही इतना परिश्रम उठाते हैं, यही कर्तव्य उत्तम पुरुषों का है, वे परोपकारार्थहि परियत्न करते रहते हैं.

" सन्तों के लक्षण "

क्षारं जलं वारिमुचः पिबंति।तदेव कृत्वा मधुरं वमंति॥
संतस्तथा दुर्जन दुर्वचांसि । पीत्वापि सूक्तानि समुद्गिरंति ॥ ३१ ॥

अर्थः— जैसे समुद्र का खारा पानी बादलों पीकर, उसे मधुर मिष्ठ बनाकर जगत् को बांट देते हैं, तैसे ही सन्त महात्मा भी दुर्जन मनुष्यों के कटु वचनों का श्रवणेंद्रिय से पान कर उनको अमृत जैसा मिष्टोपदेश सुनाकर सुखी करते हैं.

'दुर्जनों सज्जनों का कुछ नुकशान नहीं कर सकते'

कर्णे जपानां वचनं प्रपंचाःमहात्मनः क्वापि न दूषयंति।
भुजंगमानां गरलप्रसंगात्नापेयतां यांति महा सरांसि॥

अर्थः— जैसे बडे तलाव में अनेक बडे २ सर्पों अपने मुखसे गरल [जेहर] का वमन करते हैं किन्तु तलाव को वह जेहर चढता नहीं हैं, तैसेही दुष्ट पुरुष ने वमन किया दुर्वचन रूप विषकी असरभी सज्जन पुरुषों के हृदय रूप सरोवर में कभी नहीं होती है.

" दुर्जन छोडने योग्य है "

[श्लोक अनुष्टुप]

दुर्जनः परि हर्तव्यो । विद्ययालं कृतो पिसन् ॥
मणिना भूषितः सर्पः । किमसौ न भयंकरः ॥ ३२ ॥

अर्थः—जैसे मणिधर सर्प को भयंकर जान कोई मनुष्य अपने घर में प्रवेश नहीं करने देता है, तैसेही दुर्जन मनुष्य यदि विद्यादि गुण-कर संयुक्त होवे तो भी उसकी संगति कोई पसंद करता नहीं है.

" दुर्जन काँटे जैसे होते हैं "

खलानां कंटकानां च, द्विविधैव प्रतिक्रिया ॥
उपानद् मुख भंगो वा । दूरतो वापि वर्जनम् ॥ ३४ ॥

अर्थः—इस जगत में दुर्जन और काँटे दोनों समान (तुल्य) होते हैं. इसलिये जिस प्रकार जहां काँटे बिखरे होवें वहां पगरखी से उनका मुख भंग कर मनुष्यों जाते हैं तैसेही सज्जन पुरुष सज्जनतासे उसे सज्जन बनाते है या दुर्जन से दूर ही रहते हैं.

" दुर्जन पे किया उपकार भी दुःख प्रद होता है "

उपकारोपि नीचानां, मपकारोहि जायते ॥
पयःपानं भुजंगानां । केवलं विष वर्धनम् ॥ ३५ ॥

अर्थः—जैसे सर्प को पाया हुआ दुध विष रूप बन जाता है, तैसेही दुर्जन मनुष्यपर किया हुआ उपकार भी दुःख दाता हो जाता है.

" दुर्जन, सर्प से भी बूरा होता है "

सर्प दुर्जनयोर्मध्ये । वरं सर्पो न दुर्जनः ॥
सर्पो दशति कालेन । दुर्जनस्तु पदे पदे ॥ ३६ ॥

अर्थः—दुर्जन और सर्प में बडा जबर अन्तर है. सर्प तो कद

देन् दंश करना है और दुर्जन हरवक्त दुःखदेनेरूप दंश करताही
रहा है. इसलिये सर्प से भी दुर्जन बहुत बुरा है. तथाचः—

सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः । सर्पात् क्रूरतरः खलः ॥
मंत्रेण शाम्यते सर्पो । न खलः शाम्यते कदा ॥ ३७॥

अर्थः— सर्प और दुर्जन दोनों ही क्रूर खराबही होते हैं, किन्तु फरक इतना होता है कि सर्प का जेहर तो मंत्र से उत्तर जाता है किन्तु दुर्जन के हृदय में रहा द्वेष रूप जेहर किसीभी उपाय से दूर होता नहीं है.

" दुर्जन बुरे से भी बुरा होता है "

तक्षकस्य विषं दंते । मक्षिका या विषं मुखे ॥
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे । सर्वांगे दुर्जनो विषम् ॥ ३८ ॥

अर्थः— सर्प के दाढ में जेहर होता है, मधमक्खी के मस्तक में जेहर होता है, बिच्छु के पूंछ [कांटे] में जेहर होता है. और दुर्जन के रोम २ में अर्थात सब शरीर में जेहर होता है. इसलिये दुर्जन सबसे बुरा होता है.

" छे का विश्वास नहीं करना "

नदीनां च नखि नांच । शृंगिणां शस्त्र पाणिनाम् ॥
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः । स्त्रीषु राज कुलेषु च ॥ ३९॥

अर्थः—१ पानी से भरी नदीका, २ नाखूनवाले पशु पक्षीका,

३ सींगवाले पशु का, ४ जिसके हाथमें तरवारादि शस्त्र हो ऐसे मनुष्यका, ५ स्त्री का और ६ राजघराने वालेका. इन छे का विश्वास कभी नहीं करना.

" छे की संगत नहीं करना "

खरं श्वानं गजं मत्तं । रंडांच बहु भाषिणीम् ॥
राज पुत्रं कुमित्रं च । दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ४० ॥

अर्थः—१ गद्दा, २ कुत्ता, ३ मदोन्मत्त-हाथी, ४ बहूत बोलने वाली-विधवा स्त्री, ५ राजपुत्र और ६ दुर्जन मनुष्य. इन छे ही को दूर से ही त्याग देना चाहिये.

" तीनोंका संचित माल दूसरे हर लेते हैं "

पिपीलिकार्जितं धान्यं । मक्षिका संचितं मधुः ॥
लुब्धेन सञ्चितं द्रव्यं । समूलं च विनश्यति ॥ ४१ ॥

अर्थः—चीटियों ने संग्रह किया धान्य को तीतरादि खा जाते हैं, मधु मक्खीनें संग्रह किया मद्य (सेहत) को भीलादि [illegible] और लोभीयों का उपार्जन किया द्रव्य राज चोरादि [illegible] हैं. वक्त पर तीनों का अकाल मृत्यु भी हो जाता है.

" पांचों जकार को संतोषित करना

जामाता जठरं जाया । जात वेदा [illegible]
पूरिता नैव पूर्यंते । जकारा पंच [illegible]

अर्थः—१ जमाई, २ जठराग्नि-क्षुधा, ३ जाया-स्त्री, ४ जातवेदा अग्नि और ५ जलाशय-समुद्र, इन पांच ' ज ' नाम के वालोंका उदर पूर्ण कोई नहीं कर सकता है.

" अच्छे पदार्थ थोडेही होते हैं "

शैले शैले न माणिक्यं । मौक्तिकं न गजे गजे ॥
साधवो नहि सर्वत्र । चंदनं न वने वने ॥ ४३ ॥

अर्थः—सभी पर्वतों में माणिक की खान नहीं होती है, सभी हस्तियों के मस्तक में मोति उत्पन्न नहीं होते हैं, और सभी जंगल में चंदनके वृक्ष नहीं होते हैं. तैसेही साधु (सत्पुरुष) भी सर्वस्थान नहीं होते हैं.

" दश मकार चंचल होते हैं "

मनो मधुकरो मेघो । मानिनी मदनो मरुत् ॥
मा मदो मर्कटो मत्स्यो । मकारा दश चंचलाः ॥४४॥

अर्थः—१ मन, २ भ्रमर, ३ मेघ-बद्दल, ४ स्त्री, ५ लंपट-पुरुष, ६ मरुत-हवा, ७ मा चपला-लक्ष्मी ८ मद-अभिमान, ९ मर्कट-बंदर, और १० मत्स-मच्छ. ये १० बडे चंचल अस्थिर स्वभाव वाले होते हैं.

" नव काम गुप्त रखना "

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं । मंत्र भेषज मैथुनम् ॥
दानं मानापमानं च, नव गोप्यानि कारयेत् ॥ ४५ ॥

अर्थः— १ अपना आयुष्य, २ घर का धन, ३ घर के मनुष्यके छिद्र [दुर्गुण] ४ मंत्र, ५ औषध, ६ मैथुन की वातें, ७ दान-दिया हो सो, ८ अपने मुंहमे अपने गुन, ९ अपना अपमान किसीने किया सो. यह ९ काम छिपाकर रखना.

" छे लक्षन से नाकार समझना "

मौनं काल विलम्बश्च । प्रयाणं भूमि दर्शनम् ॥
सक्रोधान्य मुखे वार्ता । नकार:षड्विधः स्मृतः ॥४६॥

अर्थः— १ मौन धारन करे-उत्तर नहीं दे, २ उत्तर देने में विलम्ब करे कि-मै विचारके कहुंगा. ३ उठ कर चला जावे. ४ नीचे भूमि तरफ दृष्टि कर बैठा रहे. ५ क्रोध करने लगे और ६ दूसरे से वार्ता करने लग जावे. इन छे लक्षणो से समझना कि यह काम करने का इसका मन नहीं है.

" धर्म और कीर्ति सिवाय सब अस्थिर है "

अस्थिरं जीवितं लोके । अस्थिरं धन यौवने ॥
अस्थिरा पुत्र दाराश्च । धर्मः कीर्ति द्वयं स्थिरम् ॥४७॥

अर्थः—इस लोक में-आयुष्य, धन, योवन, स्त्री और पुत्र, यह सबही अस्थिर-नाशवान है. केवल धर्म और कीर्ति ही स्थिर है.

भाग्य विना वस्तु मिलना मुशकिल

पदे पदे निधानानि । योजने रस कूपिका ॥
भाग्य हीना न पश्यंति । बहु रत्ना वसुंधरा ॥ ४८॥

—इस वसुंधरा-रत्नगर्भा पृथ्वीमें पग पग पर द्रव्य का
न हैं, योजन योजनपर रस कूपिका (कीमिया करने की
) हैं, किन्तु जिनके भाग्योदय नहीं हुए हैं उनके देखने में
ही आती हैं.

आठ जने दूसरे के दुःख को नहीं जानते

राजा रामा यमो वन्हिः । प्राहुणो बाल याचकौ ॥
पर दुःखं न जानाति । अष्टमो ग्राम कंटकः ॥४०॥

अर्थः—१ राजा, २ स्त्री, ३ यम, ४ अग्नि, ५ मेहमान, ६
बालक, ७ याचक, और ८ कोटवाल अथवा निंदक, चुगलखोर
वगैर. यह ८ अपना मतलब साधने मे दूसरे के दुःख का ख्याल
नहीं करते हैं.

नव वस्तु स्वयं दुःखसह दूसरे को सूखी करती है.

इक्षु दंडा स्तिलाः शुद्राः । कांताः कांचन मेदिनी ॥
चंदनं दधि ताम्बूलं । मर्दनं गुण वर्धनम् ॥ ५० ॥

अर्थः—१ इक्षु,सांठा-स्वयं पिलाकर अन्यको मिष्ट रस देता है.
२. तिल-स्वयं पिलाकर अन्यको तेल देता है, ३ शुद्र-कृषी.शीतता
तापादि महा कष्टसह कर जगत् को धान्यादि उत्पन्न कर देते हैं.
स्त्रीयां अनेक कष्टसह कुटुम्बियों का पोषण करती है,५ सुवर्ण कु
रिटा कर अन्य के शृंगार के काम में आताता है. ६ पृथ्वी खीन

खोदनादि का कष्टसह कर अनेक पदार्थ उत्पन्न कर देती है. ७ चंदन;घिसनेसे जलाने से सुगंधही देता है, ८ दही का मंथन करने से मक्खन देता है. और ९ ताम्बूल-पान चाबनेवाले का मुख मंडन करता है. यों यह नवही स्वयं कष्टसह कर दूसरे को सुख देते हैं. दूसरा अर्थ—इन नवका ज्यों ज्यों अधिक मर्दन किया जाता है—कष्ट दिया जाता है—त्यों त्यों इनमें अधिक २ गुण वृद्धी पाता है.

" कहां क्या नहीं होता? "

तस्कर स्य कुतो धर्मो । दुर्जनस्य कुतः क्षमा ॥
वैश्यानांच कुतः स्नेहः।कुतः सत्यं च कामिनाम्॥५१॥

अर्थः—चोर के हृदयमें धर्म वुद्धि, दुर्जन के हृदय में क्षमा. वेश्याके हृदय में सच्चा प्रेम और कामी के हृदय में सत्य, नहीं होता है.

" श्रोता विन वक्ता क्या काम के "

किं करिष्यंति वक्तारः । श्रोता यत्र न विद्यते॥
नग्न क्षपण के देशे । रजकः किं करिष्यति ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे जहां सब नग्न—लंगोटी लगाने वाले-ही रहते हों तो वहां धोबी गया क्या काम का ? अर्थात् कुछ काम का नहीं. तैसे ही जहां सुननेवाले ही नहीं हो तो वहां पण्डित वक्ता भी क्या काम का ? अर्थात्-निकम्मा है.

" अन्याय का धन टिकता नहीं."

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं । दश वर्षाणि तिष्ठति ॥
प्राप्ते चैकादशे वर्षे । समूलं च विनश्यति ॥ ५३ ॥
अर्थ—अन्याय से उपार्जन किया धन, ज्यादासे ज्यादा दश वर्ष रह सकता है, कदाचित् इग्यारवे वर्ष रह जाय तो वह पहिले के धन को भी साथ में लेकर चला जाता है.

" उत्कृष्ट-तप-सुख-व्याधी और धर्म."

क्षमा तुल्यं तपो नास्ति । न संतोषात्परं सुखम् ॥
न च तृष्णा परो व्याधि । र्न च धर्मो दया परः॥ ५४ ॥
अर्थः— क्षमा के समान दूसरा कोई तप नहीं. संतोष के जैसा दूसरा कोइ सुख नहीं. तृष्णाके जैसा दूसरा कोइ रोग नहीं और दया के समान दूसरा कोइ धर्म नहीं.

" नीच को नीच और उंच को उंच इच्छा "

मक्षिका व्रण मिच्छंति । धन मिच्छंति पार्थिवाः ॥
नीचाः कलह मिच्छंति । शांति मिच्छंति साधवः॥५५॥
अर्थः—मक्खीयाँ एक गुम्बडा ढूंढती फिरती है, राजा धन तथा राज ढूंढता फिरता है. नीच मनुष्य क्लेश-झगडे, ढूंढता है और साधु महात्मा ओं शांति को ढूंढते हैं.

"सूपात्र दानका फल"

[श्लोक-उपजाति वृत्तम्]

सुपात्र दानाश्च भवेद्धनाढ्यो । धन प्रभावेण करोति पुण्यं॥ पुण्य प्रभावात् सुरलोक वासी । पुन र्धनाढ्यः पुनरेव भोगी ॥ ५६ ॥

अर्थः—सुपात्र में दान के देने से धन की प्राप्ति होती है. उस धन से पुण्य करनेकी इच्छा होती है, पुण्य के प्रभाव से देव लोक में जाना होता है. और वहां से मर कर पुनः मनुष्य लोक में धनाढ्य का पुत्र हो पूर्ण सुख का भोक्ता बनता है. इसलिये अहो सुखार्थी जनो ! सुपात्र में दान दीजीये.

"कुपात्र दान का फल"

कुपात्र दानाच्च भवेद्दरिद्रो । दारिद्र्य दोषेण करोति पापम् ॥
पाप प्रभावान्नरकं प्रयाति।पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी॥५७

अर्थः—कुपात्र में दान देने से दरिद्रता की प्राप्ति होती है. उस दारिद्र के प्रभाव से पुनः पाप करता है. और पाप के प्रभाव से मरकर नर्क में जाता है, वहां से निकल कर पुनः दरिद्री के कुल में जन्म लेता है और पुनः पापी बनता है.

"जीवे वहां तक हाथ न आवे"

सर्पस्य रत्नं कृपणस्य वित्तंसत्याःकुचे केसरिणाश्चकेशं

मानीनानां शरणा गते चामृनो भवे दन्य करः प्रचारः

अर्थः—जीते सर्प की मणि, कृपण का धन, सती स्त्री के पयोधर, मन्यवंत का अभिमानिका शरणागत. ये वस्तु उन के मरे बाद ही दुसरे ले सकते हैं.

"बुद्धिका विकास पांच स्थानपर होता है"

देशाटन पण्डित मित्रताचावारांगना राजसभा प्रवेशः
अनेक शास्त्रार्थ विलोकनंचाचातुर्य मूलानि भवंति पंच

अर्थः—१ अनेक देशों में फिरनेसे, २ पण्डितों से मित्रता करने में, ३ वेश्या के ठगने की कला जानने से, ४ राजा, पंच, साधु की सभा में जाने से और ५ अनेक शास्त्रों का अर्थानुप्रेक्षा करने से,कम बुद्धि मनुष्य भी चतुर-होशार हो जाता है.

"स्नेही के संयोग से हर्ष वृद्धी होती है"

अर्थो नराणां पति रंगनानां । वर्षा नदीना सृनराद तरुणाम् ।
स्वधर्मचारी नृपतिः प्रजानां,गतं गतं यौवन मानयंति॥

अर्थः—वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ मनुष्य अचानक द्रव्य की प्राप्ति हो जानेसे युवान के जैसा बन जाता है, परदेशी पति के वियोग मे वृद्धापरी दुर्बल बनी स्त्री पति के आनेसे युवति बन जाती है. सुखी हुई नदी वर्षाद ऋतु में युवा-वेगवती बन जाति है,पत्र रहित

वृक्षों वसंत ऋतु में नवपल्ल हो तरुण बन जाते हैं. और धर्मात्मा राजा के संयोग से प्रजा जन भी नवयौवन रूप देखते हैं.

" सम्पूर्ण ताका येही चिन्ह है कि झलके नहीं."

सम्पूर्ण कुम्भोन करोति शब्द।
मर्धो घटो घोष मुपैति नूनम्॥
विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वं।
गुणैर्विहिना बहु जल्पयंति॥ ६१॥

अर्थ—जैसे भरा हुआ घडा झलकता भी नहीं है और अवाज भी नहीं करता है. तैसे कुलवंत मनुष्य बडा विद्वान होकर भी गर्व-अहंकार करता नहीं है; और जैसे अधभरा घडा हग २ शब्द करता है और पानी को उछाल देता है, तैसे कुलहीन गुण हीन मनुष्य भी बडे अहंकारी और बकवाद करने वाले होते हैं.

"किसका किससे नाश होता है?

रूपं जरा सर्व सुखानि तृष्णा॥खलेषु सेवा पुरुषा भिमानम्॥ यांचा गुरुत्वं गुणमात्म पूजा॥ चिन्तायलं हंत्य दयाच्च लक्ष्मीम्॥ ६२॥

अर्थ-वृद्धावस्था रूप का नाश करती है, तृष्णा सुख का नाश करती है. दुष्ट जनों की सेवा प्राप्त मान का नाश करती है, मंगने से बड पन का नाश होता है, अपने गुनों की अपने मुखमे प्रशंसा

करने से गुणका नाश होता है. निकम्मी चिन्ता करने मे बलका नाश करती है, और लक्ष्मी दयाका नाश करती है!!

" काम बिगडे बाद चिन्ता निकम्मी "

निर्वाण दीपे किमु तैल दानं। चौरे गते वा किमु सावधानम् ॥ वयोगते किं वनिता विलासः। पयोगते किं खलु सेतु बंधः ॥ ६३ ॥

अर्थ-दीपक बुझगये बाद तैल डालना निकम्मा, चोर धन लेगये बाद जागरण करना निकम्मा, वृद्धावस्था प्राप्त हुए स्त्री संभोग की इच्छा करना निकम्मी. और वर्षाद्वर्ष गये बाद पाल बान्धनी निकम्मी (व्यर्थ) होती है.

" छे जने विना अग्नि जलते है "

कुग्राम वासः कुजनस्य सेवा।
कुभोजनं क्रोध मुखीच भार्या ॥
मूर्खश्च पुत्रो विधवाच कन्या।
विनाग्नि नार्यं दहते शरीरम् ॥ ६४ ॥

अर्थ:—१ खराब ग्राम में रहने वाला, २ नीच मनुष्य की सेवा करने वाला, ३ अमनोज्ञ भोजन खाने वाला, ४ रीसालु भार्या का पति, ५ मूर्ख पुत्र का पिता और ६ विधवा पुत्री के मा बाप, ये छहीं जने विना अंगार से हमेशा जलते रहते हैं.

" साधु का कुटुंब "

(श्लोक--शार्दूल विक्रीडितवृत्त)

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी । शांतिश्चिरं गेहिनी ॥
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी। भ्राता मनः संयमः ॥
शय्या भूमितलं दिशोपि वसनं।ज्ञानामृतं भोजनं,मे ते
यस्य कुटुम्बिनो वद सखे।कस्माद् भयं योगिनः॥६५॥

अर्थः—धैर्यरूप पिता, क्षमारूपी माता, शान्ति रूप निरंतर संगमें रहनेवाली प्रिय पत्नी [स्त्री] सत्य रूप पुत्रवधु, दया रूप बहीन; मन निग्रह रूप भाई है.और पृथ्वी ही जिन के शयन करने सुखद शैया है. दशों दिशा रूपी वस्त्र जिन के पहने को हैं. और ज्ञान रूप अमृत भोजन सेवन करते हैं. कहो मित्रों ! इतना जिनके कुटुम्ब है उन को किसका भय है. अर्थात् किसीकाभी नहीं वे सदैव आनन्दमें रहते है.

" किस के विना क्या नहीं शोभे "

राज्यं निःसचिवं गत प्रहरणं सैन्यं विनेत्रं मुखं॥
वर्षा निर्जलदा धनीच कृपणो । भोज्यं तथा ज्यं विना॥
दुःशीला गृहिणी सुहृत्कृतिमान् राजा प्रतापोज्झितः
शिष्यो भक्ति विवर्जितो नयन तथा देहश्च धर्मं विना॥६६॥

अर्थः—१ प्रधान विना का राज, २ शस्त्र विना की सेना, ४ आँख विना मुख ५ वर्षाद विना वर्षा ऋतु, ६ कृपणता युक्त धनेश्वरी, ७ घृत विना का भोजन, ८ सदाचार विना की स्त्री,

९ गुण भूलने वाला मित्र, १० प्रताप विना का राजा, ११ भक्ति विना के शिष्य' ओर १२ धर्म विना का शरीर. इन सबों की शोभा किस प्रकार से भी होती नहीं है.

" धर्म विना मनुष्य की शोभा नहीं. "

निर्दन्तः करटी हयोगत ज व चंद्रं विना शर्वरी ॥
निर्गंधं कुसुमं सरोगत जलं, छाया विहीनस्तरू ॥
भोज्यं निर्लवणं सुतो गतगुण श्चरित्र हीनो यति-।
निर्देव भवनं नराजति सदा धर्म विना मानवः ॥ ६७ ॥

अर्थः—१ दाँत विना हाथी, २ चालविना घोडा, ३ चंद्र विना रात्रि, ४ सुगंध विना फूल, ५ पाणी विना तलाव, ६ छांया विना वृक्ष, ७ निमक विना भोजन, ८ गुण विना साधु, १० देव विना मंदीर, जिस प्रकार शोभता नहीं हैं, उसही प्रकार धर्म विन मनुष्य भी शोभता नहीं हैं.

" किस विना किसकी शोभा नहीं "

प्रीति र्दृष्टि विना सुखं धन विना गेहं च भार्यां विना।
विप्रा वेदं विना यती गुण विना राजा च सैन्यं विना ॥
शूरः शस्त्र विना स्त्रियः पति विना पूजा विना देवता ॥
सर्व तच न शोभते किम परं देहश्च जीवं विना ॥ ६८ ॥

अर्थः—१ आँखों मिले विना प्रीति, २ धन विना सुख,

३ स्त्री विना घर, ४ वेदपाठ विना ब्राह्मण, ५ गुण विना साधु ६ सेना विना का राजा, ७ हथीयार विना सूरट ८ भक्ति विना का शिष्य, और ९ धर्म विना कर शरीर शोभता नहीं है.

"वृद्धावस्था की स्थिति"

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टाच दंतावली ।
दृष्टिर्नश्यति वर्द्धते बधिरता वक्त्रंच लालायते ॥
वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नीन शुश्रूषते ।
धिक कष्टं जरया भिभूत पूरुषं पुत्रोऽप्य व ज्ञायते ॥

अर्थः—वृद्धावस्थामें शरीर संकोचित होजाता है. चाल बाँकी होजाती है, दाँत नष्ट हो जाते हैं, आँखों से अच्छा दीखता नहीं है, कान से पूरा सुना जाता नहीं है. मुंह में से लाल टप कने लग जाती है. भाइ बन्ध कहना नहीं मानते, प्रिय पत्नी भी सेवा नहीं करती और पुत्र भी अवज्ञा करने लग जाते हैं. इसलिये धिक्कार ह वृद्धावस्थाको.

"दैव के कोप की वक्त बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है"

(श्लोक अनुष्टप)

धातुर्वादे तथा द्यूते । यक्षिणि मंत्र साधने ॥
परदारे तथा चौरे । दैवे रुष्टे मतिर्भवेत् ॥ ७० ॥

अर्थः—जब मनुष्यके अशुभ कर्मोदय होता है तब सुवर्ण सिद्धि आदि कीमीया साधन करने का मन होता है. परस्त्री गमन

झना चहाता है चोरी करने प्रवृत होना है, यह पापोदय के लक्षण जानना.

" पाणी के गुण "

अजीर्णे भेषजं वारि, जीर्णे वारि बल प्रदम् ॥
भोजने चामृतं वारि । भोजनांते विष प्रदम् ॥ ७१ ॥
अर्थः—अजीर्ण पर गरम पाणी औषध तुल्य गुण करता है, निरणे कोठमें पाणी पीने से बल वृद्धी होती है, भोजन करते बीच में पाणी पीना सो अमृत तुल्य है. भोजन किये बाद पानी विष तुल्य होता है.

" बुरा काम करने से, नहीं करना ही अच्छा "

(श्लोक-शिखरणी वृत्तम्)

वरं मौनं कार्यं, नच वचन मुक्तं यदि नृतं ।
वरं क्लीबं पुंसां, नच पर कलत्राभि गमनम् ॥
वरं प्राण त्यागो, नच पिशुनताया मभिरुचि ॥
वरं भिक्षाशित्वं, नच परधना स्वादन सुखम् ॥७२॥

अर्थ--झूट बोलने से तो मोनस्थ रहनाही अच्छा है, परस्त्रीके गमन करने से नपुंसक (नामर्द) रहनाही अच्छा है. चुगली आदि लबाडी करके उदर पूर्ण करने से तो मरनाही अच्छा है. और दूसरे के धनकी आशा करने से तो भीक्षोपजीवी होनाही अच्छा है.

"धर्मकाममें विलम्ब नहीं करना"

(श्लोक शार्दूलविक्रीडित)

यावत् स्वस्थमिदं कलेवर गृहं यावज्जरा दूरतो ।
यावच्चेन्द्रिय शक्तिर प्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः ।
आत्म श्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् ।
संदीप्ते भवने च कूप खननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥७३॥

अर्थ-- जहांतक शरीर सुखमें है, जहांतक वृद्धावस्था प्राप्त नहीं हुई है, जहांतक इन्द्रियों की शक्ति कम नहीं पडी है, और जहांतक आयुष्य का क्षय नहीं हुआ है, वहांतक अहो सुज्ञ पुरुष! आत्मश्रेयका धर्म कार्य शीघ्रता से करले. क्योंकि जिस प्रकार घरमें अंगार लगे बाद उसे बुझाने को पाणीके लिये कूवा खोदना निरर्थक है, तैसेही शारीरिक शक्ति नाश हुए बाद धर्म होना भी असंभवहै.

" कौनसा देश त्यागने योग्य ? "

छेदश्चन्दन आम्र चम्पक वने रक्षापि शाखोटके ।
हिंसा हंस मयूर कोकिल कुले काकेशु नित्यादरः ॥
मातंगेन खर क्रयः समतुला कर्पूर कार्पासयो
रेषायत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः॥७४

अर्थः—जिस देश में चन्दन, आम्र और चम्पा के उत्तम वृक्षों का छेदनकर, बबूल थूवर जैसे नीच वृक्षोंका होता हो. जहां हंस, मयूर, कोकिला जैसे उत्तम

नाशकर कौवे घुघु जैसे नीच पक्षियोंका पोषण होता हो. जहां हाथी और गद्धे की एक हि किंमत होती हो. जहां कपूर और कपास को समान मानते हों. अर्थात् सद्गुणी और दुर्गुणी की परीक्षा नहो, सद्गुणी का अपमान और दुर्गुणी का सन्मान होता हो. ऐसे देश को दूरसेही नमस्कार करना. अर्थात् दूरसेही त्याग देना अच्छा है.

" परस्पर एक सें एक की एक शोभा हे. "

मणिना वलयं वलयेन मणि,र्मणिना वलयेन विभाति करः । कविना च विभुर्विभुना च कविः कविना विभुना च विभाति सभा ॥ ७५ ॥ शशिना च निशा निशया च शशी,शशिना निशया च विभाति नभाः। पयसा कमलं कमलेन पयः, पयसा कमलेन विभाति सरः॥ ७६ ॥

अर्थः— मणि से कंकण की शोभा है, और कंकण से मणिकी शोभा है मणि और कंकण दोनों कर हाथ शोभता है. कवी से राजा की शोभा है और राजा से कवी की शोभा है कवी और राजा दोनों कर सभा की शोभा है चंद्रमासे रात्रि की शोभा है और रात्रि से चन्द्रमाकी शोभा है चन्द्रमा और रात्रि दोनोंकर आकाश की शोभा है. पाणी से कमल की शोभा है और कमल से पाणी की शोभा है पाणी और कमल दोनों कर तलावकी शोभा हैं. यों परस्पर एकेक से एकेक अच्छे लगते है. अच्छेसेही माम की

शोभा होती है.

" प्राप्त वस्तु की सफलता "

(श्लोक उपजाति वृत्तम्)

बुद्धेःफलं तत्त्व विचारणं च। देहस्यसारं व्रत धारणं च ॥ अर्थस्य सारं किल पात्र दानं। वाचःफलं प्रीतिकरं नराणाम् ॥ ७७ ॥

अर्थः—बुद्धि प्राप्त होने का सार है कि तत्त्वातत्त्व का विचार करना. मनुष्य शरीर प्राप्त करने का सार है कि सम्यक्त्व पूर्वक व्रतों का स्वीकार करना, धन प्राप्त करने का सार है कि सुपात्रमें दान देना और वचन प्राप्त करनेका सार है कि सर्वी से प्रीति कर वचन बोलना.

" ज्ञानी के १० लक्षण "

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्वं। क्षमा दया सर्व जन प्रिय त्वम् ॥ निर्लोभ दाता भय शोक हर्ता। ज्ञानिनराणां दश लक्षणानि ॥ ७८ ॥

अर्थः—१ क्रोध रहित, २ वैराग्यवंत, ३ जितेन्द्रिय, ४ क्षमावान, ५ दयालु, ६ सबी को प्रियकारी. ७ निर्लोभी. ८ दातार. ९-१० भय ओर शोक दूर करने वाला, यह १० लक्षण जिसमें हो सो ज्ञानी.

" ज्ञान दान की महिमा "

[श्लोक मालिनी वृत्तम्]

सगजरथ तुरङ्गं गोगनं भूमिदानं, कनकरुचिर पात्रं मेदिनीं सागरांतां ॥

उभय कुल विशुद्धं कोटि कन्या प्रदानं, न भवति खलु तुल्यं ज्ञानदानैः समानम् ॥ ७९ ॥

अर्थः—सैकडो-हाथी घोडे रथ गायों पृथ्वी (खेत) सुवर्ण पात्र समुद्रके अन्त तक पृथवी का राज, निर्मल जाति कुल की क्रोड कन्या, इन सभी का दान कर देताभी ज्ञान दान के तुल्य न आवे, सब में श्रेष्ट ज्ञान दान है.

" दारिद्र की प्रशंसा "

(गाथा-आर्या वृत्तम्.)

दीसंति जोग सिद्धा । अंजन सिद्धाय केइ दीसंति ॥
दारिद्र जोग सिद्धा । पास थिट्टिया न दिसंति ॥ ८० ॥

(श्लोक-अनुष्टुप वृत्तम्)

भो दारिद्र नमस्तुभ्यं । सिद्धो हं तव दर्शनात् ॥
अहं सर्वांश्च पश्यामि । नमां पश्यति कश्चन ॥ ८१ ॥

अर्थः—दरिद्री कहता है कि-जो योग का साधन कर सिद्ध पुरुष बने हैं, वेभी देखनेमें आते हैं, और अंजन सिद्धी से अदृष्य बने हैं, किसी प्रयोग से वेभी देखने में आजाते हैं.

किंतु दरिद्री मनुष्य यदि दातार के नजीक बैठा हो तोभी वह उसे देख सकता नहीं है. ॥ ८० ॥ इस लिये हे दारिद्र मैं तुझे नमस्कार करता हूं क्यों कि मैं तेरे दर्शन से (प्रताप से) सिद्ध के समान अदृश्य बन गया हूं, कि मुझे कोइ देखही नहीं सकता ॥८१॥

" समान कोण २ "

(पथ्यम्)

पुत्ताय सीसाय समं विभत्ता। रिसिणोय देवाय समं विभत्ता॥
मुक्खा तिरिक्खाय समं विभत्ता। मुआ दरिद्दाय समं विभत्ता॥ ८२ ॥

अर्थः—पुत्र और शिष्य दोनो सरीखे, ऋषि और देव दोनो सरीखे, मूर्ख और तिर्यंच (पशु) दोनो सरीखे, मुरदा और दरिद्री दोनो सरीखे.

" जो प्रार्थना भंग करे सो सर्व सें तुच्छ "

(गाथा-आर्या वृत्तम्)

तण लहुयं तुस लहुयंच, ॥ तण तुस लहुयं च पत्थणा लहुयं ॥ तत्तोवि सोय लहु ओ । पत्थणा भंगो कओ जेण ॥ ८३ ॥

अर्थः—मनसे तुच्छ तृण होता है. उससे भी तुच्छ तुश होता है. और तृण तुश से मंगने वाला तुच्छ होता है. किन्तु जो

शक्तिमान् हो मंगनेवाले की प्रार्थना करता है वह उस मांगनेवालेमें भी तुच्छ होता है !

परपत्थणा पविन्नं । माजणणी ! जणय एरिसं पुत्तं ॥
उयरे विमाधरिज्जयं । पत्थण भंगो कओजेण ॥ ८४ ॥

अर्थः—अहो मातेश्वरी दूसरेके पास याचना करनेवाले पुत्र को जन्मना नहीं. कदाचित ऐसे भी पुत्र को जन्म दे तो तेरी इच्छा किन्तु प्रार्थना का भंग करने वाला-मंगत को नकारा कहने वाले पुत्र. का तो तू पेट में धारण ही मत करना अर्थात् जन्म नहीं देना.

विधाता को उपालंभ

(श्लोक-मालिनी वृत्त)

शशिनि खलु कलंकं कंटकं पद्मनाले ।
जलधि-जलम पेयं पण्डिते निर्धनत्वम् ॥
दयित जन वियोगो दुर्भगत्वं स्वरूपे ।
धनपति कृपणत्वं रत्नदोषी विधाता ॥ ८५ ॥

अर्थः—अहो विधाता तैने यह क्या किया ? चन्द्रमा को कलंकित कर दिया, कमलकी नाल को काँटे लगादिये, समुद्र का पानी खारा कर दिया, विद्वानको निर्धन रख दिये, रूपवती स्त्री को विधवा कर दी, प्रियजनको वियोगी बनाया, सुरूपवानको दुर्भागी बनाया, और धनेश्वरी को कृपण बना दिया विधी के प्रतापसे ये रत्नो भी संतोसतोष होने हैं.

" सात दुर्व्यसन "

(श्लोक- उपजाति वृत्तम.)

द्यूतं मांसंच सुराच वेश्या, पापर्द्धि चौरी परदार सेवा। एतानि सप्तव्यसनानी लोके, घोराति घोरं नरकं ददन्ति ॥ ८६ ॥

अर्थ:—१ जुवा खेलना, २ मांस का खाना, ३ मदिरा का पीना, ४ वेश्यागमन करना, ५ सिकार खेलना, ६ चोरी का करना और ७ परस्त्री गमन. इन सातों दुर्व्यसनों के सेवन करने वाले मरकर अति दारुण दुःखवाली नरक में जाते हैं ॥

" रात्रि भोजन रोग कर्ता "

(श्लोक अनुष्टुप)

मेधां पिपीलिका हन्ति । यूका कुर्याज्जलोदरम् ॥ मक्षिका कुरुते वान्ति । कुष्ट रोगं च कोलिकः ॥ ८७॥

अर्थ.—रात को भोजन करने से-जो चिंटी खाने में आ जावे तो बुद्धि का नाश होवे. जो यूंका (ज्यूं) खाने में आजावे तो जलोदर का रोग हो जावे. मक्खी खाने में आजावे तो वमन हो जावे, और जो मकडी खाने में आजावे तो कुष्ट-कोड रोग उत्पन्न हो जावे.

"व्यर्थ काम"

वृथा वृष्टी समुद्रेषु । वृथा तृप्तेषु भोजनम् ॥
वृथा दान धनाढ्येषु । वृथा दीपो दिवापिच ॥ ८८ ॥

अर्थः—समुद्र में वर्षाद वर्षना व्यर्थ, तृप्त (धापे हुए) को भोजन कराना व्यर्थ, धनेश्वरी को दान देना व्यर्थ और दिनको दीपक लगाना व्यर्थ.

'ब्राह्मण के लक्षण'

सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म । ब्रह्म चेन्द्रिय निग्रहः ॥
सर्व भूते दया ब्रह्म । एतद् ब्राह्मण लक्षणम् ॥ ८९ ॥

अर्थः—जो सत्य ही बोले, तपश्चर्या करे, पांचों इन्द्रियका निग्रह करे-नियममें रखे और सब जीवोंपर दया करे,सोही ब्राह्मण होता है.

"२७ व नाम की वस्तु होवे सो शेहर"

(श्लोक—शार्दुल विक्रिडित वृतम्)

वापी वप्र विहार वर्ण वनिताः । वाग्मी वनं वाटिका॥
वैद्या ब्राह्मण वारि वादि विबुधा।वेश्या वणिक वाहिनी।
विद्या वीर विवेक वित्त विनया । वाचंयमा वल्लिका
वस्त्रं वारण वाजी वेसर वरं । राज्य वभिः शोभते ॥

अर्थ—१ बावडी, २ वप्र-किला, ३ बगीचा ४ अठारे वर्ण के लोगों ५ वनिता-स्त्री, ६ वाचाल, ७ वन, ८ वाडी, ९ वैद्य, १० ब्राह्मण, ११ वारि-पाणी, १२ चर्चा-वादी; १३ विबुद्ध

१४ वैश्या, १५ वनिक, १६ वाहिनी-नदी, १७ विद्यावंत, १८ वीरपुरुष, १९ विवेकी, २० वितेधन, २१ विनय वान, २२ वानक-साधु, २३ वेल-वलिया, २४ वस्त्र, २५ वारण-हाथी, २६ वाजी-घोडा, और २७ वेसर-खचर. यह-यह २७ ही वकार के प्रथम अक्षर वाली जहां प्रधान वस्तु हो, वहीं शहर है.

'मर्यादमें रहने वालाही फते पावे'

(श्लोक अनुष्टुप)

नक्रः स्वस्थान मासाद्य । गजेन्द्रमपि कर्षति ॥
स एव प्रत्युत स्थानाच्छुनापि परि भूयते ॥ ९१ ॥

अर्थ—मगर मच्छ स्वस्थान अर्थात् पानीमें रहकर हाथी जैसे बडे प्राणीका भी नाश कर सकता है. और जो वह स्वस्थान को छोड कर अर्थात् पानी बाहिर आजावे तो उसे कुत्ते जैसा भी मार सकता है. सारांश यह है कि हही मर्याद में रह कर काम करने वालाही फत्ते पा सकता है, मर्याद का उलंघन करने वाला वक्त पर अकाल में मारा जाता है.

"मर्याद भंग कर्त्ताके मित्र भी वैरी हो जाते हैं"

पद स्थितस्य पद्मस्य । मित्रे वरुण भास्करौ ॥
पदच्युतस्य तस्यैव । क्लेशदाह करा वुभौ ॥ ९२ ॥

अर्थ—कमल पुष्प स्वस्थान सरोवर में रहता है उस वक्त उसके मित्र हवा और सूर्य दोनों ही सुखदाता होते हैं. और वही कमल जो

स्वस्थान त्याग कर जो पृथवी पर जा पड़े तो वेही मित्र उसे दुःख दाता होजाते हैं. हवा उडा देती अर्थात् है और सूर्य सुका देता है.

" कितनी वस्तु स्वस्थान में ही अच्छी लगती है. "

राजा कुलवधूर्विप्रा । मंत्रिणश्च पयोधराः ॥
स्थान भ्रष्टा न शोभंते दंताः केशा नखा नराः ॥९३॥

अर्थः—राजा, कुलवंती स्त्री, ब्राह्मण, प्रधान, वगैरह, दांत, बाल, नख और मनुष्य, ये सब स्थान में ही अच्छे लगते हैं, स्थान भ्रष्ट हुए बने नहीं शोभा नहीं पाते हैं.

" सारांश ग्रहण करो "

(श्लोक उपजाती वृत्तम)

अनेक शास्त्रं बहु वेदितव्य-मल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः ॥
यत्सार भूतं तदुपासितव्यं । हंसो यथा क्षीर मिवाम्बुमध्यात् ॥ ९४ ॥

अर्थः—जगत् में शास्त्रों बहुत है, पढना भी बहुत है, किन्तु आयुष्य थोडा है और उस में भी विघन बहुत आते है, इसलिये जैसे हंस के सन्मुख पाणी और दूध दोनों मिलाकर रख दे तो वह दुध २ पी जाता है और पाणी को छोड देता है, तैसेही शास्त्र पढकर सार २ ग्रहण कर लेना और असार को छोड देना चाहिए.

" क्रोध शरीर को भी जलाता है "

क्रोधोहि शत्रु प्रथमो नराणां । देहस्थितो देह

शनाय ॥ यथास्थितः काष्ठगतोहि वन्हिः । सएव वन्हिर्दहते शरीरं ॥ ९४ ॥

अर्थः—जैसे बांश के अंदर रही अग्नी बांश का नाश करती है, तैसेही शरीर में रही क्रोध रूप अग्नी शरीर को जलाती है. इसलिये क्रोध त्यागने सेही शांति प्राप्त होती है.

" अच्छे की संगत से अच्छा " बनता है.

यति व्रतीत्यपि पतिव्रता च। वीराश्च शूराश्च दया पराश्च ॥ त्यागीच भोगीच बहुश्रुताश्च । सुसंग मात्रेण दहंति पापम् ॥ ९६ ॥

अर्थः—जितेंद्रिय, व्रतधारी, पतिव्रता स्त्री, वीरपुरुष, शूर पुरुष, त्यागी पुरुष, और बहुत शास्त्र के पढे हुए. इनकी संगत करनेवाला भी उनके जैसाही गुनवान बन जाता है.

" एक से दूसरे की शोभा होती है "

(श्लोक वंशस्थ वृत्त)

श्रुतेन बुद्धि र्व्यसनेन मुर्खता ।
मदेन नारी सलिलै र्निमग्ना ॥
निशा शशांकेन धृतिः समाधिना ।
नयेन चालंक्रियते नरेंद्रता ॥ ९७ ॥

अर्थः—शास्त्र से बुद्धि, दुर्व्यसन से मूर्खता, मद से स्त्री, पाणी से नदी, चन्द्रमासे रात्रि. समाधि से धैर्यता. और न्याय

मे राजा शोभा पाता है.

" सब धर्म सब गुरु सरीखे नहीं "

(श्लोक-अनुष्टुप वृत्तम्.)

वाजि वारण लोहानां । काष्ट पाषाण वाससाम् ॥
नारी पुरुष तोयाना, मंतरं महदंतरम् ॥ ९८ ॥

अर्थः—घोडे घोडे में, हाथी हाथी में, लोह लोह में, लकड लकड में, पत्थर पत्थर में, वस्त्र वस्त्र में, पुरुष पुरुष में, पाणी पाणी में, और रात्रि दिन में, जितना अंतर होता है, तैसेहि धर्म धर्म में, और साधु साधु में भी बडा अन्तर होता है. सब सरीखे नहीं होते है.

" कितनीक वस्तुकी परिक्षा भी नहीं करना "

नदीनां च कुलांनाच । मुनीनांच महात्मनाम् ॥
परीक्षा नही कर्तव्या । स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ॥ ९९ ॥

अर्थः—नदी के मूलकी, साधु के कुल की,और स्त्री के दुश्चरित्रकी परिक्षा नहीं करना चाहिये.क्योंकि इसका परिणाम श्रेष्ट नहीं.

" पांच महा पापी "

धर्म निन्दी पंक्ति भेदी । निद्रा छेदी निरर्थकः ।
कथा भंगी गुण द्वेषी । पंचै ते परमा धमाः ॥ १०० ॥

अर्थः—१ धर्म की निंदा करने वाला, २ पंक्तिका भेद करने वाला, ३ विना काम सूते को जगाने वाला, ४ चलते व्याख्यान

में भंग डालने वाला और ५ गुणी जन का द्वेष करने वाला, ये पांच महा पापी होते हैं.

'मक्खी हाथ घिसकर शिर क्यों कूटती हैं ?'

(श्लोक-शार्दूलविक्रीडित)

देयं भोज धनं सुकृतिभिर्नो संचितव्यं कदा।
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ॥
अस्माकं मधु दान भोगरहितं नष्टं चिरात् संचितं ॥
निर्वाणादपि पाणिपाद युगलं घर्षत्य हो मक्षिका १०१

अर्थ— एक वक्त भोजराजा पण्डितों सहित सभामें बैठे थे, उस वक्त एक मक्खी भोज राजाके हाथ पर आ बैठी. राजा उसको देखता है तो वह हातों को मल मल कर शिर को कूट रही है, तब राजा ने पण्डित से प्रश्न किया, कि—यह मक्खि क्या करती हैं? तब पण्डित बोले कि—अहो राजेन्द्र! यह मक्खी इस प्रकार सूचना कर रही है कि मैंने बहुत पुष्प के वृक्षों पर परि भ्रमण कर उन का रस चूस २ कर लाइ और मध (सहेत) को का छत्ता बनाया, उसकी रक्षा करनेको अहो निश उसपर बैठी रही, किसी को हाथ भी नहीं लगाने दिया और न मैंने खाया. अबी एक भिल आकर अग्नि आदि प्रयोग से हमे दुःखी कर वहां से भगादि,और वह सब मध(सहत)वहां से लेगया.वहां से उड कर मैं आप के सम्मुख आ अर्ज करती हूं कि—जो मेरे जैसे

दुःखी नहीं होना हो तो, आपने पूर्व पुण्योदयसे राज ऋद्धि आदि बहुत धन प्राप्त किया है उसका शीघ्रही सद्व्यय कर दीजीये ! संचय करके रखना नहीं. दान के देने से कर्णराजा बलिराजा और विक्रम राजा इत्यादि राजा ओं की कीर्ति जगत्में ताजी बनी हुई है. इतनी सूचना करने पर भी जो आप दान धर्म का समाचरन नहीं करोगे तो हमारे जैसीही स्थिति आपकी होगी!!

॥ सत्पुरुषों के सद्गुणों ॥

॥ शार्दूल विक्रीडित ॥

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता ॥
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानिता,
रूपे सुन्दरता प्रभौ भजनिता सत्स्वेव सदृश्यते१०२

अर्थः—धर्म में तत्परता, मुहमें [वचन में] मीठाश, दान में उत्साह, मित्रोंके साथ निष्कपटपणा, गुरुका विनय, चित्तमें अति गंभीरपना, आचारमें पवित्रपना, सद्गुणोंपर प्रीति, शास्त्रका संपूर्ण ज्ञान, आकृति में सुंदरपना, और परमात्मा में भक्ति. यह सद्गुणों सत्पुरुषोंमें ही देखनेमें आते हैं ॥

॥ अंतिम प्रार्थना ॥

सर्वे सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु. मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्॥१०३

अर्थ:---सर्व जीवों सुखी होवो, सर्वजीवों आरोग्यवान बनों, सर्व जीवों अपने आत्माका कल्याण करो, और कोई भी प्राणी दुःखी न होवे यही प्रभुसे मेरी प्रार्थना है ॥

॥ प्रशस्ति ॥

शार्दूल विक्रीडित वृत्तम् ॥

श्रीजैनाभिधदर्शने स्तुतियुते श्वेताम्बराख्ये मते,
नाम्नूरभूदिह कानजी मुनिवरः श्रीसाधुमार्गिव्रजे ।
तद्गच्छे सुविहार्य्यमोलक ऋषिःस्वस्मै पदार्थं मया,
तेनेदं विविधो पदेश करणं प्रासंगिकं वर्णितम् ॥ १ ॥

अनुष्टुप

खानदेशे ऽ धुना ग्रामे, धूलियाख्ये स्थिते नच ।
हिंदिव्याख्यां विधायोप-देशशतं प्रकाशितम् ॥ २ ॥
रसाष्टाङ्कक्रुवर्षेच, विक्रमे शुभ विक्रमे ।
नभस्य भ्रपिपक्षम्यां, शोभने रविवासरे ॥ ३ ॥

॥ त्रिभिः कुलकम् ॥

भावार्थः—विश्व में प्रशंसनीय और सुप्रसिद्ध श्रीजैनश्वेताम्बरसाधुमार्गी-स्थानकवासी महाजनमें परमपूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज हुए. उनके संप्रदायमें शांतिपूर्वक पृथ्वीपर विचरता हुआ ऐसा मैने [अमोलक ऋषिने] स्वपरहितार्थ विविध प्रकारका उपदेश करनेवाला, प्रासंगिक (जिसमें प्रसंगोचित श्लोका संग्रह

है), ऐसा यह ' उपदेशशतक ' हिंदीभाषा में अनुवाद कर के, पश्चिम खानदेश में धुलिया गाममें रहकर विक्रम संवत १९८६ का भाद्रपद ऋषिपंचमी रविवार के दिन पूर्ण किया (लिखकर तैयार किया) ॥

॥ ॐ शांति शांति शांति ॥

इति उपदेश शतकं

उन्नति अवनति का मार्ग

आ गया है कर्म युग कुछ कर्म करना. ए देशी

इस फूटने ही हम सभीको शक्ति हीन बना दिया । इस फूटने जातियों को-छिन्न भिन्न बना दिया, इस फूटने ही धर्म को ग्लानी पूर्ण बनादिया,इस फूटने ही देशको भी नष्ट भ्रष्ट बना दिया इस फूटका सिर फोड कर अब ऐक्य करना चाहिये ॥ सब गच्छ वालों को परस्पर मेल रखना चाहिये । विद्या तथा बलका प्रचारण कार्य करना चाहिये॥ इस मार्ग में जिन-धर्म का उद्धार करना चाहिये॥



पद्यात्मक-श्री महावीर स्तुति.

पुच्छिस्सुणं समणा महणाय।आगारिणो या परतित्थीयाय॥
सेकेइ नेगन्त हियं धम्म माहू।अणेलिसं साहु समिक्खयाए॥
पूछेंगे साधु श्रावक आदि । गृहस्थि तथा कोइ परतीर्थ वादी ॥
कहा किस ने धर्म एकन्त हित कारी॥अनोपम अच्छा कहा सम्यग् प्रकारी॥१॥
कहंच णाणं कहं दंसणं से । सीलं कहं नाय सुतस्स आसि ॥
जाणासिणं भिक्खु जहा तहेणं।अहासुत्तं बूही जहा णिसंतं॥
कैसे ज्ञानी कैसे दर्शनी कहिये । आचारी कैसे ज्ञातपुत्र भइये ॥
आप जानते हो जैसे थे वैसे । जैसा सुना कहो मुझे भी तैसे ॥ २ ॥
खेयन्ने से कुसले महेसी।अणन्त नाणीय अणन्त दंसी॥
जसं सिणो चक्खु पहठियस्स।जाणाहि धम्मं च धिइंच पेहि॥
खेदके जाण थे कुशल महा ऋषि । अनन्त ज्ञानी और अनन्त दर्शी ॥
यशस्वी च भूत मोक्ष पन्थ देखे । जानते धर्मको धैर्य को पेखे ॥ ३ ॥
उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर जेह पाणा ॥
से णिच णिचेहि समिक्ख पन्ने ।दीवेव धम्मं समियं उदाहु॥
ऊँची नीची रु तिरछी दिशा में भी । त्रस और स्थावर प्राणी जेही ॥
नित्य अनित्य सम्यग् तरेह जाना । दीपासा धर्म सभा में बखाना ॥ ४ ॥
से सव्वदंसी अभिभूय णाणी।णिरामगन्धे धियमे ठिनप्पा॥
अणुत्तरे सव्व जगंसि विज्जं । गंथा अतीते अभय अणाऊ॥

...न्ने सब देखा न हरासके ज्ञाता । सर्व दोष रहित धैर्य में स्थिर आता ॥
...व जगत् की उत्तम विद्या जाने । अभय अनायु भेदी ग्रन्थी ताने ॥ ५ ॥
से भूइ पन्ने अणिए अचारी । ओहंतरे धीरे अनन्त चक्खु ॥
अणुत्तरे तप्पइ सूरिएवा । वइरोयणी देव तमं पगासे ॥ ६ ॥
दीर्घ प्रज्ञी अप्रातिबन्ध विहारी । भवोघ तीरे धीर अनन्त नेत्र धारी ॥
श्रेष्ठ तप जग में सूर्य समान । मिथ्या तम नशाने अग्निसे जान ॥ ६ ॥
अणुत्तरं धम्म मिणं जिणाणं।णेया मुनि कासव आसुपन्ने ॥
इन्देव देवाण महाणुभावे । सहस्स णेता दिविणं विसिट्ठे ॥
प्रधान धर्म के नायक जिनेश्वर । न्यायी मुनिश्वर दीर्घ बुद्धिधर ॥
देविन्द्र देवो मे महा भाग्यवान । हजार आँखो देवों में श्रेष्ठ जान ॥ ७ ॥
सेपन्नया अक्खय सागरे वा।महोदही वा वी अणन्त पारे ॥
आणाइ लेया अकसाइ भिक्खु।सक्केव देवा हिवइ जुइमं॥
अक्षय ज्ञानी समुद्र नीर जैसे । सयंभुरमण अनन्त अपार तैसे ॥
रज मैल रहित वे अकषाइ यति । सकेन्द्र की जैसी दीपती जोती ॥८॥
से वीरीएण पडिपुन्न वीरीए । सुदंसणेवा णग सव्व सेट्ठे ॥
सुरालए वा सि मुदागरे से । विरायए णेग गुणो वयेय ॥ ९ ॥
वे प्रतिपूर्ण बलवन्त महावीर । सर्व पर्वतों मे श्रेष्ठ मेरू से धीर ॥
देवों भी वहां रहे आनन्द पाये । अनेक गुणों से विराजे शोभावे ॥९॥
सयं सहस्साण उ जोयणाणं । तिकण्डगे पण्डग वे जयन्ते ।
से जोयणे णवणवाते सहस्सेउद्धु स्सिनो हेट्ठ . . .

सो सहस्र योजन का ऊंचा जान । त्रिकाण्ड पण्डगवनध्वजा समान ॥
निन्याणु सहस्र योजन जमीसे ऊंचा।एक सहस्र योजन पृथ्वी में नीचा॥१०॥
पुढे णगे चिट्ठइ भूमिवठिए।जं सूरिया अणुपरि वट्टयन्ति ॥
से हेमवन्ने बहु नंदणय।।जंसी रतिं वेदयंति महिन्दा॥११॥
स्पर्शी आकाश वो जमीपे रहीया । सूर्य सदा जास प्रदक्षिणा दइया ॥
सुवर्ण वरण बहुत आनन्द करी । यहां साता पावे महेन्द्र भारी ॥ ११ ॥
से पव्वए सद्द महाप्पगासे । विरायती कंचन मट्ट वन्ने ॥
अणुत्तरे गिरि सुयपव्व दुग्गे।गिरी वरेसे जलिएव भोमे॥१२
वो पहाड मोले नामोंसे प्रकाशे । अति शोभितो कंचन रंग भासे ॥
विषम मेखला से अति प्रधानो । पृथ्वी के सब पहाडोंमें दिव्य जानो ॥ १२ ॥
महिइ मज्झंमि ठिए णगिन्दे । पन्नायते सुरिये सुद्धलेसे ॥
एवं सिरिएउ स भूरि वन्ने।मणोरमे जावइ अच्चीमाली॥१३
पृथ्वीके मध्य में नगेन्द्र रहा है । सूर्य सरिखा निर्मल कहा है ॥
इत्यादि लक्ष्मी से अनेक वरणा । दिन कर सम ज्योति मनहरणा ॥ १३ ॥
सुदंसणस्से व जसो गिरिस्स । पवुयइ महतो पव्वयस्स ॥
एतोवमे,समणे नायपुत्ते । जाती जसो दंसण णाण सीले॥१४
सुदर्शन पर्वत सर्व गिरी में । कहा है बडा सर्व गिरी सिर में ॥
यह ओपमा साधु श्री महावीर । जाति यश ज्ञान दर्शन शील सिरे ॥ १४ ॥
गिरि वरेवा निसहायायाणं।रुयएव सेट्टे वलयायताणं ॥
तओवमे से जग भूइ पन्ने।मुणीण मज्झे तमुदाहू पन्ने ॥ १५

म्यगिरी में निषध श्रेष्ट जाणो। गोळे गिरी में रूचक को बखाणो ॥
ह ओपमा जगमें दीर्घ बुद्धिवंत। मुनियोंमें वीर महाबुद्धि मन्त ॥ १५ ॥

णुत्तरं धम्म मुईरइत्ता। अणुत्तरं झाण वरं झियाइ।
सुसुक्क सुक्कं अपगन्ड सुक्कं।संखिन्दु वेगंतव दात सुक्कं॥१६

वैमे उत्तम धर्म को उचारा। सर्वमे उत्तम ध्यान को धारा ॥
ज्वल से उज्वल अतिही उज्वल। शंख दूध चन्द्रमा से अति वीमल ॥ १६ ॥

णुत्तरग्गं परमं महेसी। असेस कम्मं सविसोहइत्ता।
सिद्धिगते साइ मणंत पत्ते।नाणेण सीलेण य दंसणेणं॥१७

वि मुनियों में प्रधान महा मुनि। निर्मळ हुवे सब कर्म रज धुनि ॥
सिद्धहो शाश्वत अनन्त सुखपाया। ज्ञान दर्शनके चारित्र से सिधाया ॥ १७ ॥

क्खेव सुणाय जह सामलीया। जंसीरतिं वेदयन्ति सुवन्ना।
णेसु वा णंदण माहु सेट्ठं।नाणेण सीलेण य भूति पन्ने॥१८

क्षों में उत्तम शामली जानो। उम पे सुवर्ण कुमार रहा सुख मानो ॥
नों में श्रेष्ठ नंदन वनको बखानो। ज्ञान शील महाबुद्धि त्यों बुद्धपानो॥१८

थणियेव सदाण अणुत्तरे ओ।चन्दोव ताराण महाणुभावे।
न्धेसु या चंदन माहु सेट्ठं।एवं मुणीणं अपडिन्न माहु॥१९

जारव शब्द शब्दों में प्रधान। चन्द्र ताराओं में महानुभव मान ॥
गंध में श्रेष्ट है बावना चन्दन। त्यों वीर मुनियोंमें अप्रति बन्धन ॥ १९ ॥

जहा सयंभु उदहीण सेट्ठं।नागेसु वा धरणिन्द माहु सेट्ठं।
वोओदए वा रसवे जयन्ते।तवो वहाणे मुणिवे जयन्ते॥२०

ज्यों सयंभुरमण समुद्रों में जेष्ट । धरणिन्द्र नाग कुमारों में श्रेष्ट ॥
इक्षुका रस सब रस में प्रधानो । तप में प्रधान ज्यों वीरमुनि जानो ॥ २० ॥
हत्थीसु एरावण माहु णाएसीहो मियाणं सलिलाण गंगा।
पंक्खी सुवा गरुले वेणु देवोणिव्वाण वादी णिह णायपुत्ते॥२१
हस्तीयों में एरावण कहा श्वामी । मृगोंमें सिंह नदीमें गङ्गा नामी ॥
पक्षियों में गरुड वेणु देव मोटा। त्यों निर्वाण वादी में सिद्धार्थ बेटा ॥ २१ ॥
जोहे सुणाए जहा वीससेणापुप्फेसु वा जहा अरविन्द माहु।
ग्वत्तीण सेट्ठे जहा दन्तवक्के इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥ २२
जोधा ओं में श्रेष्ट है वासुदेवो । पुष्पों में अरविंद कमल लेवो ॥
क्षत्री यों में श्रेष्ट चक्रवर्ती राजा । ऋषियों में श्रेष्ट वृद्धमान आजा ॥ २२ ।
दाणाण सेट्ठं अभय प्पयाणं।सचेसु वा अणवज्जं वयन्ति।
तवेसु वा उत्तम बंभचेरं।लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ।
दान में श्रेष्ट अभय को वखाना । सत्य बचनों में भी निर्वद्येण माना ।
तप में उत्तम है ब्रह्मचर्य सूत्र । लोकों में उत्तम साधु ज्ञात पुत्र ॥ २३ ।
ठिइण सेट्ठा लवसत्तमावा।सभा सुहम्माव सभाण सेट्ठा।
निव्वाण सेट्ठा जहा सव्व धम्मा।णणायपुत्ता परमत्थी नाणि
आयुष्य श्रेष्ट है सर्वार्थ सिद्धका । सभा में सुधर्मा श्रेष्ट सुर रिद्धका ।
मोक्ष दाता धर्म सब धर्मों में भारी । अन्य नहीं ज्ञात पुत्र सा ज्ञान धारी ॥ २४ ।
पुढोवमे धुणइ विगय गेहि । न सण्णिहिं कुव्वइ आसूपन्ने।
नरितु समुद्दंच महाभवोघं ।अभयंकरे वीर अणन्त चक्खू
पृथ्वी परे देह ममत्त्व त्यागी । दीर्घ प्रज्ञी अक्रोद्री वीतरागी ।

तैरे समुद्र महा भवोध रूप । अनन्त चक्षु अभय करे वीर भूप ॥ २५ ॥

कोहंच माणंच तहेव मायं । लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा ॥
ए आणिवंता अरहा महेसी॥ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ॥२६

तैसेही क्रोध मान और माया । लोभ चौथा आदि आत्म दोषों पाया ।
सब को खपा हुवे अर्हं महा ऋषि । न करे करावे पाप न धरे खुशी ॥ २६ ॥

किरिया किरियं वेणइयाणु वायं ।
अणाणी याणं पडियच्च ठाणं ॥

सेसव्व वायं इतियेय इत्ता॥उवट्ठीए संजम दीह रायं ॥ २७॥

किरीया अकिरीया विनय अज्ञानी । चारों कुवादि दुर्गति दाता जानी ।
उन सब वादीको जान के छोड़ा॥अहो निश संयम में त्रियोग जोड़े ॥ २७ ॥

से वारिया इत्थी सराइ भत्तं॥उवहाणवं दुःखखय ठयाय
लोगं विदिता आरं पारंच॥सव्वं पभु वारियः सव्ववारं ॥

चो वीर नारी निशी भक्त त्यागी । दुष्कर करणी से गये दुःख भागी ।
लोक परलोक सब जानन हार । प्रभु ने रोके सब आश्रव द्वार ॥ २८ ॥

सोचाय धम्मं अरहंत भासियं॥समाहितं अट्ठ पदो विशुद्धं॥
तं सद्दहन्ता जणा अणाऊ॥इन्देवदेवा हिव आग मिस्संति॥

त्तिबेमी ॥२९॥ इति विरत्थुइझयणं सम्मत्तं॥

सुना धर्म ऐसे अर्हंत का फरमाया॥अर्थ पाठ शुद्ध सम हित से दर्शाया ।
इसे श्रद्ध कर हुवे अजरा अमर । कइ इंद्र देव हो आगे सिद्धीवर ॥ २९ ॥



कळश.

श्री महावीर गुण गणधर फरमये ॥
नस्यानुसार अमोलक ऋषि गाये ॥
अशुद्धि विद्वजन शुद्ध कराई ॥
पढते सूनते मङ्गल होवे सादाई ॥ १ ॥

॥ इति श्री महावीर स्तुति पद्यात्मक समाप्तम् ॥

पंच महव्वय सुव्वय मूलंसमणा मणाइल साहू सुचिन्नं।
वेर वेरामण पज्जवसाणंसव्व समुद्द महोदधि तित्थं ॥१॥
पांचों महाव्रत सर्व सुव्रत मूल । श्रावक के बारह व्रत अनुकूल ॥
वैर विरोध परिणामों से समाये । वे सब जगोदधिका अंत पाये ॥ १

तित्थं करे हिं सुदेसिय मग्गं ।
नरग तिरिक्ख विवज्जिय मग्गं ॥
सव्व पवित्तं सु निम्मिय सारं ।
सिद्धि विमाणं अवगुय दारं ॥ २ ॥

तीर्थ करों ने अच्छा उपदेशा मार्ग । टालेय दुर्गति तिर्यंच नर्ग ॥
सर्व से पवित्र सर्व का सार । सिद्ध गति के खुले किये द्वार॥ २ ॥

देव नरिन्द नमंसिय पूयं ।
सव्व जगुत्तम मंगल मग्गं ॥
दुद्धरी संगुण नायक सेगं ।
मोक्ख पहस्स वडिंसग भूयं ॥ ३ ॥

देवेंद्र नरेंद्र नमे उस नरको । सर्व जगोत्तम मार्ग आचर वो ॥
यह धर्म अपार गुणी ज्यों असमानामत्तोंतम मोक्षमार्ग मुगट समान ॥ ३ ॥

श्रीनमि पवज्या अध्ययन.

चइऊण देवलोगाओ । उववन्नो माणुसम्मि लोगंमि॥
उवसन्त मोहणि ज्जो । सरई पोराणियं जाई ॥ १ ॥
चवकर देवलोक से आये । मनुष्य लोक में जन्मज पाये ॥
मोहनीय कर्म उपसमाये । जाति स्मरण ज्ञान प्रगटाये ॥ १ ॥
जाइं सरित्तु भयवं । सहं संबुद्धो अणुत्तरे धम्मे ॥
पुत्तं ठवित्तु रज्जे । अभिणिक्खमई नमि राया ॥ २॥
जातिस्मरण पाकर भगवंत । धर्म प्रधान स्वयमेव समझंत ॥
पुत्र राज पर स्थापन कीना । नमी रायजी संयम लीना ॥ २ ॥
सो देव लोग सरिसे । अन्तेउर वरगओ वरे भोए ।
भुंजित्तु नमिराया । बुद्धो भोगे परिच्चयई ॥ ३ ॥
जिन के थे देव लोक समान । अन्तेउर बीच भोग प्रधान ॥
भोगवते थे उसे नमिराय । तत्वज्ञ बन दिये छिटकाय ॥ ३ ॥
महिलं सपुर जणवयं । बल मोरोहंच परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिनिक्खंतो । एगंत महिट्ठिओ भयवं ॥४॥
जनपद देश युत मिथिला नगरी । परिवार सेना सब अन्तेउरी ॥
छोड के निकले वन में गये । एकान्त में स्थिर भगवंत रये ॥ ४ ॥
कोलाहलग भूयं । आसी मिहिलाइ पव्वयंत्तम्मि ॥
तइया रायरिसिम्मि । नमिम्मि अभिनिक्खमंतम्मि ५
कोलाहल भूत शब्दज भया । दीक्षा काज मिथिला पुरी मया ॥
उस वक्त ने राय ऋषि । नमीजी निकल गये होखुषि ॥ ५ ॥

अब्भुट्ठिअं रायरिसिं । पवज्जा ठाणमुत्तमं ॥
सक्को माहण रूवेण । इमं वयण मब्बवी ॥ ६ ॥
राजरुषि सावधान भये । दीक्षा के उत्तम स्थान रये ॥
शक्रेंद्र ब्राह्मणका रूप धर । करने लगे प्रश्न इसपर ॥ ६ ॥
किन्नु भो अज्ज मिहिलाए । कोलाहलग संकुला ॥
सुव्वंति दारुणा सद्दा । पासाए सु गिहेसु अ ॥ ७ ॥
अहो किसलिये आज मिथिला माही । कोलाहल व्याकुल भयाइ ॥
दारूण शब्द यह रहे सुनाइ । प्रासाद गृह इत्यादि ठाइ ॥ ७ ॥
एअमट्ठं निसामित्ता । हेउ कारण चोइ ओ ॥
तओ नमि रायरिसी । देविन्दं इणमब्बवी ॥ ८ ॥
उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमि ऋषि राय । देवेन्द्र से यों दरशाय ॥ ८ ॥
मिहिलाए चेइए वच्छे । सीअच्छाए मणोरमे ।
पत्त पुप्फ फलोवेए । बहूणं बहू गुणे सया ॥ ९ ॥
मिथिला के वन मे था वृक्ष । शीतल छाय मनोरम रक्ष ॥
पत्र पुष्प फल से उपपेत । बहु पक्षी आश्रय गुणशेत ॥ ९ ॥
वाएणं हीरमणम्मि । चेइअम्मि मणोरमे ॥
दुहिआ असरणा अत्ता । एए कंदन्ति भोखगा ॥ १० ॥
वायु वेग से शिथिल थाय । वन का मनोरम वृक्ष गिराय ॥
दुःखी अशरण आर्तवंत । भो ! इन्द्र ये पक्षी आरंडत ॥ १० ॥
एयमट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारण चोई ओ ॥
तओ नमीरायरिसिं । देविन्दो इण मब्बवी ॥ ११ ॥

उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ।
उसही वक्त नमिऋषि राय । को देविन्द्र यों दरसाय ॥ ११ ॥

एस अग्गि अ वाऊ अ । एअं डज्झइ मंदिरं ॥
भयवं अंतउरं तेणं । कीसणं नाव पिक्खह ॥ १२ ॥

यह अग्नि और वायु प्रयोग । ये मंदिरादि बने वन्ही भोग ।
अहो भगवं अन्तेपुर तुम्हारो । क्यों नहीं आप नयन निहारो ॥ १२

एअमट्टं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइओ ॥
तओ नमीरायरिसी । देविन्दं इणमब्बवी ॥ १३ ॥

उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ।
उसही वक्त नमिऋषि राय । देविन्द्र से यों दरसाय ॥ १३ ॥

सुहं वसामो जीवामो । जेसिं मो नत्थिकिंचणं ॥
मिहिलाए डज्झमाणीए । नमे डज्झइ किंचणं ॥ १४ ॥

सुख में बसते जीते हैं हम । उस में नहीं मेरी किंचित रकम ॥
मिथिला नगरी यह जो जले । उस में मेरा किंचित नहीं बले ॥ १४ ॥

चत्त पुत्त कलत्तस्स । निव्वावारस्स भिक्खुणो ॥
पिअं न विज्जए किंचि । अप्पियं पि न विज्जए ॥१५॥

मैंने पुत्र कलत्र त्यागे । सब व्यापार बिन साधु सागे ॥
प्रियकारी तस किंचित नाही । अप्रिय कारी भी नहीं कांही ॥ १५ ॥

बहुखु मुणिणो भद्दं । अणगारस्स भिक्खुणो ॥
सव्व आ विप्प मुक्कस्स । एगंत मणुपस्स ओ ॥ १६ ॥

बहुत सुखी साधूजी रहते । घर रहित भिक्षुक हैं जे ते ॥
सर्व परिग्रह रहित भया । एकान्त आत्म सुख देख रया ॥ १६ ॥

एअमट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥
नओ नमिं रायरिसिं । देविन्दो इण मब्बवी ॥ १७ ॥
उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमिऋषि राय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ १७ ॥
पगारं कारइत्ताणं । गोपुरट्टा लगाणि ओ ॥
ओसूलग सयग्घीओ । तओ गच्छसि खत्तिआ ॥ १८ ॥
नगर चौ और किल्ला बन्धाय । दरवज्जे रु झरोखे लगाय ॥
चौ और खाइ सतघनी स्थाप । पीछे दीक्षा लेना आप ॥ १८ ॥
एवमट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥
तओ नमिरायरिसी । देविन्दं इणमब्बवी ॥ १९ ॥
उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमिऋषि राय । देविन्द्र से यों दरशाय ॥ १९ ॥
सद्धं च नगरं किच्चा । तव संवर मंगलं ॥
खंती निऊण पगारं । तिगुत्तं दुप्पधंसगं ॥ २० ॥
श्रद्धा रूप तो नगर बनाया । तप सम्वर आर्गल लगाया ॥
क्षमा रूप मजबूत है कोट । तीन गुप्ति गुप्त न लगे चोट ॥ २० ॥
धणुं परक्कमं किच्चा । जीवंच इरिअं सया ॥
धिइं च केअणं किच्चा । सच्चेण पलि मंथए ॥ २१ ॥
धर्म में पराक्रम रूपी धनुष्य । इर्या समिति जीवा प्रकर्ष ॥
धैर्य रूपी मूठ लगाई । सत्य रूप बन्धन से बन्धाइ ॥ २१ ॥
नव नाराय जुत्तेणं । भित्तूणं कम्म कंचुअं ॥
मुणि विगय संगामो । भवाओ परि मुच्चइ ॥ २२ ॥

अभ्यन्तर तप बाण सहित । भेदे कर्म शत्रु खचित ॥
मुनि ने तजा द्रव्य संग्राम । भवसे भ्रम से पाये विराम ॥ २२ ॥

एअ मट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइओ ॥
तओ नामि रायरिसिं । देविंदो इणमब्बवी ॥ २३ ॥

उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से मेरित बनी ॥
उसही वक्त नमिऋषि राय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ २३ ॥

पासाए कारइत्ताणं । वद्धमाण गिहाणि अ ॥
बालग्ग पोइ आ ओ अ । त ओगच्छसि खत्तिआ ॥ २४ ॥

विविध प्रकारे महल बनाय । वृद्धमान गृह भी कराय ॥
वायु जल भुवन सजाय । फिर दीक्षा लो क्षत्री राय ॥ २४ ॥

एअ मट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥
तओ नामि रायरिसी । देविंदं इण मब्बवी ॥ २५ ॥

उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमिऋषि राय । देविन्द्र को यों दरशाय ॥ २५ ॥

संसयं खलु सो कुणइ । जो मग्गे कुणइ घरं ॥
जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा । तत्थ कुव्वेज्ज सासयं ॥ २६ ॥

जिस को जाने का संशय होय । रस्ते में घर करता सोय ॥
जो जानेको इच्छे नर । वहां करे वह शाश्वत घर ॥ २६ ॥

एअमट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥
तओ नमि राय रिसिं । देविन्दो इणमब्बवी ॥ २७ ॥

उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमि ऋषिराय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ २७ ॥

आमोसे लोमहारे अ । गंठी भेए अ तक्कर ॥
नगरस्स खेमं काऊणं । तओ गच्छसि खत्तिया ॥ २८
प्रकार ठग लुटारे तांई । ग्रन्थी छेदक चोरों नशाइ ।
नगर देश में क्षेम वरताय । फिर दीक्षा लो क्षत्रीराय ॥ २८ ॥

एअमट्ठं निसमित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥
तओ नमी रायरिसी । देविन्द इणमब्बवी ॥ २९ ॥
उक्त प्रकारसें अर्थ सुनी । हेतु कारण से,प्रेरित बनी ।
उसही वक्त नमि ऋषिराय । देविन्द्र से यों दरशाय ॥ २९ ॥

असइं तु मणुस्सेहिं । मिच्छा दंडो पजुञ्जए ॥
अकारिणोत्थ बज्झंति । मुच्चइ कारगो जणो ॥ ३० ॥
संसार में नर अनेकवार । झूठा दंड देते दुःख कार ।
साहुकार कों दंडित करे । चोरी करता कों परिहरे ॥ ३० ॥

एअमट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥
तओ नमि रायरिसिं । देविन्दो इणमब्बवी ॥ ३१ ॥
उक्त प्रकारे अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमिऋषि राय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ ३१ ॥

जे केई पत्थिवा तुब्भं । न नमंति नराहिवा ॥
वसे ते ठावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिआ ॥ ३२ ॥
लो जो कोइ राजा तुम तांय, । अहो नराधिप नम ते नाय ॥
उनको पहिले वश में लाय, । फिर दीक्षा लो क्षत्री राय ॥ ३२ ॥

एयमट्ठं निसमित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥
तओ नमि रायरिसी । देविंद इण मब्बवी ॥ ३३ ॥

उक्त प्रकार से अर्थ सुनी। हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमि ऋषि राय। देविंद्र से यों दरसाय ॥ ३३ ॥

जो सहस्सं सहस्साणं। संगामे दुज्जए जिणे ॥
एगं जिणिज्ज अप्पाणं। एस से परमो जओ ॥ ३४ ॥

जो दश लक्ष सुभटों भणी। दुर्जय को जीते एक धणी ॥
एक जीते निजात्म तांय। परम जयवंत वही कहाय ॥ ३४ ॥

अप्पाण मेव जुज्झाहि। किं ते जुज्झेण बज्झओ ॥
अप्पाणं मेव अप्पाणं. जइत्ता सुहमेहए ॥ ३५ ॥

निजात्म से कर संग्राम। अन्य से लड़ने का क्या काम ॥
शुद्धात्म अशुद्धात्मसे लड़े। जीते के सुख मुक्ति के वरे ॥ ३५ ॥

पंचिंदियाणि कोहं माणं मायं तहेव लोहं च ॥
दुज्जयं चेव अप्पाणं। सव्वमप्पे जिए जियं ॥ ३६ ॥

पांचों इन्द्रिय क्रोध के संग। मान माया लोभ से जंग ॥
दुर्जय अपने ए शत्रु जब। जीते उसने जीते रिपु सब ॥ ३६ ॥

एयमट्ठं निसामित्ता। हेऊ कारण चोइओ ॥
तओ नमि रायरिसिं। देविंदो इण मव्ववी ॥ ३७ ॥

उक्त प्रकार से अर्थ सुनी। हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमि ऋषिराय। को देविन्द्र यों दरसाय ॥ ३७ ॥

जइत्ता विउले जण्णे। भोइत्ता समण माहणे ॥
दचा भुचा य जट्ठाय। तओ गच्छसि खत्तिआ ॥ ३

विविध प्रकार के यज्ञ कराय। सन्यासी ब्राह्मण जिमाय ॥
देकर दान भोगव के भोग। फिर संयोग [illegible]

एअमट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइ ओ ॥
नओ नमी रायरिसी देविन्दं इण मब्बवी ॥ ३९ ॥
उक्त प्रकारसे अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमिऋषि राय । देविन्द्र से यो दरशाय ॥ ३९ ॥
जो सहस्सं सहस्साणं । मासे मासे गवं दए ॥
तस्सावि संजमो से ओ । अदितस्सावि किंचणं ॥ ४० ॥
जो दस दस लक्ष गाय के तांय । महिने महिने दान दिराय ॥
उसको भी संयम श्रेयकार । न दे उसे भी श्रेय संयम भार ॥ ४० ॥
एयमट्ठं निसामिसामिा । हेउ कारण चोइ ओ ॥
नओ नमिं रायरिसी । देविन्दो इण मब्बवी ॥ ४१ ॥
उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमिऋषि राय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ ४१ ॥
घोरासमं चइत्ता णं । अन्नं पत्थेसि आसमं ॥
इहेव पोसह रओ । भवाहि मणुआ हिवा ॥ ४२ ॥
दुष्कर ग्रहस्थाश्रम को छोड । चारित्राश्रम लेने की कोड ॥
घर में रही पौषधादि ठाय । अहो नृपति मनो यही वाय ॥ ४२ ॥
एअमट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारणं चोइ ओ ॥
नओ नमी रायरिसी । देविन्दं इणमब्बवी ॥ ४३ ॥
उक्त प्रकार से अर्थ सुनी ! हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमि ऋषिराय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ ४३ ॥
मासे मासे उ जो बालो । कुसग्गेणं तु भुंजए ॥
न सो सुअक्खाय धम्मस्स । कलं अग्घइ सोलसिं ॥ ४४ ॥

अज्ञानी तप करे मास मास । कुशाग्र जेता पारणे ग्रास ॥
संयम धर्म तुल्य नहीं आवे । सोलमी कला लायक नहीं थावे ॥ ४४ ॥

एअमट्टं निसामित्ता । हेउ कारण चोइ ओ ॥
तओ नमिं रायरिसीं । देविन्दो इणमब्ववी ॥ ४५॥

उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमि ऋषिराय । को देविन्द्र यों दरशाय ॥ ४५ ॥

हिरणं सुवण्णं मणिमुत्तं । कंसं दूसं च वाहणं ॥
कोसं वड्ढावइत्ता णं । तओ गच्छसि खत्तिआ ॥ ४६ ॥

मणि मोती चांदी और सुवर्ण । धातु वरतन वस्त्र और वाहन ॥
प्रथम इन से भरो खजाना । अहो क्षत्रीराज फिर तुम जाना ॥ ४६ ॥

एअमट्टं निसामित्ता । हेउ कारण चोइओ ॥
तओनमी रायरिसी । देविन्दं इणमब्बवी ॥ ४७ ॥

उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमिऋषि राय । देविन्द्र से यों दरशाय ॥ ४७ ॥

सुवण्ण रूप्पस्स पव्वया भवेसिआहु केलाससमा असंख्या।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचिइच्छा हु आगाससमा अणंतिआ॥

सोने रूपे के पर्वत होय । कभी केलास से असंख्य सोय ॥
लोभी को देते नहीं तृपताय । तृष्णा अकाशसी अनन्त कहाय ॥ ४८ ॥

पुढवी साली जवाचेव । हिरणं पसूभिस्सह ॥
पडिपुण्णं नाल मेगस्स । इइ विज्ज तवंचरे ॥ ४९ ॥

पृथवी शाल जवादि धान । रूपादिधन पशु भी सब जान ॥
सब दिये एक को तृप्ति न करे । ऐसा जान संयम आदरे ॥ ४९ ॥

एअमट्ठं निसामित्ता । हेऊ कारण चोइओ ॥
नओनामि रायरिसिं । देविन्दो इणमब्बवी ॥ ५० ॥
उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ।
उसही वक्त नमि ऋषिराय । को देविन्द्र यों दरसाय ॥ ५० ॥

अच्छेरगम भुदए । भोए चयसि पत्थिवा ॥
असंते कामे पत्थेसि । संकप्पेण विहण्णसि ॥ ५१ ॥
अहो मुझ भूपति आश्चर्य आय , अद्भुत भोगों को तजी के जाय॥
अन होते भोग इच्छा करी । संकल्प से रहे हानी हो नरी ॥ ५१ ॥

एयमट्ठं निसामित्ता । हेउ कारण चोइ ओ ।
नओ नमीरायरिसी । देविन्दं इणमब्बवी ॥ ५२ ॥
उक्त प्रकार से अर्थ सुनी । हेतु कारण से प्रेरित बनी ॥
उसही वक्त नमि ऋषिराय । देविन्द्र से यों फरमाय ॥ ५२ ॥

सल्लं कामा विसं कामा । कामा आसी विसोवमा ॥
कामे पत्थे माणा । अकामा जंति दुग्गइं ॥ ५३ ॥
काम भोग शल्य विष समान । आसी विष अही की उपमान ॥
काम भोग की इच्छा करे । बिन भोगे ही दुर्गति में पड़े ॥ ५३ ॥

अहेवयइ कोहेणं । माणेणं अहमागइ ॥
माया गइपडिग्घा ओ । लोहा ओ दुह ओ भयं ॥ ५४ ॥
नीची गति में क्रोध से जाय । मान अधर्म गति में ले जाय ॥
माया से उत्तम गति का नाश । लोभ से दोनों भव में त्रास ॥ ५४ ॥

अव उज्झिऊण माहण रूवं । विउरू विऊण इंदत्तं ॥
वंदइ अभित्थुणं तो । इमाहिं महुराहिं वग्गूहिं ॥ ५५ ॥

त्याग दिया ब्राह्मण का रूप । वैक्रय कर इन्द्र का स्वरूप ॥
वंदन कर के स्तुति करे । मधुर वचन इसपर उचरे ॥५५॥

अहो ते निज्जिओ कोहो । अहो ते माण पराजिओ ॥
अहो ते निरकिया माया । अहो ते लोहो वसीक ओ ॥५६

अहो आश्चर्य तुम अति क्रोध । आश्चर्य हरा दिया मान योध ॥
अहो आश्चर्य माया दूर हरी । अहो आश्चर्य तृष्णा वश करी ॥ ५६ ॥

अहो ते अज्जवं साहु । अहो ते साहु मद्दवं ॥
अहो ते उत्तमा खंती । अहो ते मुत्ति उत्तमा ॥ ५७ ॥

आश्चर्य तुमारी सरलता श्रेष्ठ । आश्चर्य तुमारा मार्दव जेष्ठ ॥
आश्चर्य तुमरी उत्तम क्षमा । आश्चर्य निर्लोभिता में रमा ॥ ५७ ॥

इहंसि उत्तमो भंते । पेच्चा होहिसि उत्तमो ॥
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं । सिद्धिं गच्छसि नीरओ ॥ ५८ ॥

यहां भी उत्तम हो भगवंत । आगे भी उत्तम होवोगे संत ॥
लोकते उत्तमोत्तम स्थान । जावोगे मोक्ष करी कर्म हान ॥ ५८ ॥

एवं अभित्थुणं तो । रायरिसिं उत्तमाइ सद्धाए ॥
पायाहिणं कुणंतो । पुणो पुणो वंदए सक्को ॥ ५९ ॥

उक्त प्रकारे स्तुति करी । राज ऋषि की उत्तम श्रद्धा धरी ॥
प्रदक्षिणा वर्त करता तेह । बारम्बार शक्रेन्द्र वंदे एह ॥ ५९ ॥

तो वंदिऊण पाए । चक्कंकुस लक्खणे मुणिवरस्स ॥
आगासेणुप्पइओ । ललिअ चंचल कुंडल तिरिडी ॥ ६० ॥

फिर उभय पद वंदन किए । चक्रांकुश अंकित मुनि के जिए ॥
आकाश मार्गे स्वस्थान गये । ललित कुंडल मुगट चमक रये ॥ ६० ॥

नमी नमेइ अप्पाणं । सक्खं सक्केण चोइ ओ ॥
चइऊण गेहं विदेही । समण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥ ६१ ॥

नमिराय ऋषि आत्म नमाई ! शक्र प्रत्यक्ष मेरें चेलनाई ॥
विदेह देश घर त्यागन करी । शुद्ध चारित्र उत्तम समाचरी ॥ ६१ ॥

एवं करिंति संबुद्धा । पंडिआ पविअक्खणा ॥
विणियट्टंति भोगेसु । जहासे नमी रायरिसि ॥ ६२ ॥

इस प्रकार तत्त्वज्ञ करे । पंडित विचक्षण गुण आदरे ॥
काम भोग से निवृत्ती पाय । नमी राज ऋषि ज्यों सुखी थाय ॥ ६२ ॥

नमि राज ऋषि गुण जिन कथानस्यानुसार अमोल ऋषिरचे
अशुद्धी विज्ञजन लेना सुधार । पढते सुनते होवे मंगलाचार

श्री वीराब्द चौवीस सो पच्चावन । चवदश कृष्णा रवी पुष्प श्रावन ॥
पांच साधु सुखे रहे चौमास । धुलिया शहर खानदेश खास ॥ ६३ ॥

